कौल-कल्पतरु चण्डी

ज्येष्ठ-आषाढ़ २०४३
जून-जुलाई ८६
वर्ष ४५
संख्या ३–४

'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल जी की १५ वीं पुण्य तिथि

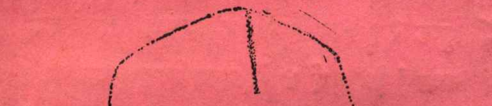

पण्डित देवीदत्त शुक्ल

आविर्भाव
वैशाख कृष्ण ३ सं० १९४५
तिरोभाव
ज्येष्ठ कृष्ण ११ सं० २०२८

महा-विद्या सूत्रम्
(जून-जुलाई ८६ अङ्क का विशिष्ट साहित्य)
पृष्ठ ९—१७

'मन्त्रकोष' विशेषाङ्क
(परिशिष्ट)

'निदान' एवं सङ्केत का रहस्य
(पृष्ठ ३)

बीज-मन्त्र और उनकी सार्थकता
(पृष्ठ २९)

यह प्रति ३)५० रु० वार्षिक मूल्य २१ रु०
दो अतिरिक्त विशेषाङ्क सहित वार्षिक मूल्य ६१ रु०

वर्ष ४५ : ज्येष्ठ-आषाढ़ २०४३ वि०—जून-जुलाई १९८६ : सं० ३-४

१ श्री प्रत्यङ्गिरा माला-मन्त्र : प० पू० श्री स्वामी हिमालय अरण्य, बंगाल १
२ प्राधानिक रहस्य में महा-लक्ष्मी : पं० सतीशकुमार उपाध्याय, मेजा रोड, इलाहाबाद २
३ निदान या संकेत का निरूपण ('मन्त्र-कोष' विशेषाङ्क का परिशिष्ट) ३
४ महा-विद्या सूत्रम् : 'काव्य-कण्ठ' गणपति मुनि ९
५ श्रीमहा-माया 'रात्रि-सूक्त' ('कालिका-पुराण' से उद्धृत) १८
६ सन्त-वचनामृत : श्रीवदनसिंह, रायभा, आगरा, उ० प्र० २१
७ मानवोद्धार हेतु एक-मात्र मां दुर्गा : पं० भुवनेश्वर झा, मधुबनी, विहार २३
८ आहुति : प० पू० श्री कापालिक उद्बोधनानन्द जी २५
९ दिव्य चक्षु का उन्मीलन : श्री मनोहर देवगुण, नई दिल्ली २७
१० बीज-मन्त्र और उनकी सार्थकता : 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०, प्रयाग २९
११ बाबाश्री चरितामृत (लेखमाला) : गताङ्कों से प्रकाशित धारावाहिक साहित्य २५-३२

सम्पादकीय

पूज्य बाबा श्री का १९४५ का उद्बोधक निवेदन

प्रस्तुत अङ्क में 'बाबाश्री चरितामृत' लेखमाला में पृष्ठ २९ पर एक महत्वपूर्ण 'निवेदन' प्रकाशित हुआ है। बाबाश्री का यह निवेदन सन् १९४५ ई० में 'चण्डी' के वर्ष ४ में प्रकाशित हुआ था। उक्त 'निवेदन' में दिया हुआ उद्बोधन हम सभी शाक्त-बन्धुओं के लिये आज पहले से अधिक महत्वपूर्ण है। कारण इधर तीस-चालीस वर्षों में 'काल' की तीव्र एवं विलक्षण गति के कारण हम लोगों के लिए कर्त्तव्य-विमुखत्व, पशुत्व, कृतघ्नता तथा श्रीप्रसाद-त्याग की घड़ी प्रायः उपस्थित है। अब भी यदि बाबा श्री की इस चेतावनी को ध्यान न देंगे तो निश्चित रूप में हम लोगों के लिए निस्तार का कोई उपाय फिर शेष न रहेगा।

बाबाश्री ने स्पष्ट कर दिया है कि 'चण्डी' केवल कुछ व्यक्तियों का प्रयास नहीं है। 'चण्डी' साक्षात् महामाया द्वारा 'पुनर्जीवन संस्कार' हेतु अवतरित हुई है। बाबाश्री के शब्दों में हमारा एक-मात्र कर्तव्य है कि स्वान्तःकरण में श्रीदया-मयी की स्थापना कर उनका एक 'सङ्घ-भाव' से पूजन करते हुए श्री-प्रसाद शिरोधार्य करें।

आइये, आज गुरु-पूर्णिमा २०३३ वि० के पुनीत अवसर से, हम सब सच्चे हृदय से, पूरे मन से सर्व-प्रचार-रूप गुरु-कार्य में प्रयत्नशील हो जायें। महामाया से प्रार्थना करें कि वह हमें शक्ति प्रदान करें, जिससे हम अधिकाधिक कर्तव्य-बोध ग्रहण कर उसका पालन कर अपने जीवन को सार्थक बना सकें।

श्रीप्रत्यंगिरा माला-मन्त्र

परम पूज्य श्री स्वामी हिमालय अरण्य, श्री हेमवती पीठ, बंगाल

'मन्त्र-कोष' भाग (३) के पृष्ठ २३० पर १२५ अक्षरों का उक्त माला - मन्त्र निम्न प्रकार दिया गया है—

ॐ ह्रीं नमः कृष्ण-वाससे स्तुते विश्व-सहस्र-हिंसिनि सहस्रावने महा - बलेऽपराजिते प्रत्यङ्गिरे पर-सैन्य-पर-कर्म-विध्वंसिनि पर-मन्त्रोत्सादिनि सर्व-भूत-दमनि ! सर्व-देवान् बन्ध बन्ध सर्व-विद्यां छिन्धि छिन्धि क्षोभय क्षोभय पर-यन्त्राणि स्फोटय सर्व-शृङ्खलां त्रोटय त्रोटय ज्वल-ज्वाला-जिह्वे कराल - वदने प्रत्यङ्गिरे ह्लीं नमः ।

एक पूर्णाभिषिक्त साधक के घर की अति प्राचीन पाण्डुलिपि में १६१ अक्षरों का माला-मन्त्र देखने में आया है । यथा—

ॐ नमो भगवति कृष्ण-वासिनि शत-सहस्र-लक्ष-कोटि-सिंह-वाहिनि सहस्र-वदने अष्टादश - भुजे अजिते अपराजिते प्रत्यङ्गिरे पर-सैन्य-कर्म-विध्वंसिनि सर्व-शत्रूच्चाटिनि पर - मन्त्र - छेदिनि सर्व-भूत-दमिनि सर्व-देव-निबन्धिनि ! सर्व-विघ्नान् छिन्धि छिन्धि सर्वानिष्टानि कृन्तय कृन्तय सर्व-दुष्टान् भक्षय भक्षय ज्वल ज्वल ज्वाला-जिह्वे कराल-वदने सर्व-शत्रून् संहर संहर वज्र - शृङ्खलान् त्रोटय त्रोटय ऐं प्रत्यङ्गिरायै नमः ।

उक्त दोनों मन्त्र रौद्री 'प्रत्यङ्गिरा' के हैं । ब्राह्मी, नारायणी और अथर्वण भद्रकाली प्रत्यङ्गिरा के मन्त्र प्राप्त होते हैं । रौद्री 'श्रीविद्या-रत्नाकर' में भी हैं । पाठ-भेद में कहीं 'हिंसिनि' है, कहीं 'सिंह-वाहिनि' । कहीं 'कृष्ण-वदने' है, कहीं 'कृष्ण-वाससे' । वैसे प्रत्यङ्गिरा के ध्यान में 'सिंहारूढाधि - कृष्णां' भी है । कहीं 'सर्व-देवान्' है, कहीं 'सर्व-देहान्' । कहीं 'पर - मन्त्राणि' है, कहीं 'पर - तन्त्राणि' या 'पर-यन्त्राणि' । कहीं 'सर्प-शृङ्खला', कहीं 'वज्र-शृङ्खला' । अनेक पाठान्तर 'मन्त्र-कोष' में भी दिए गए हैं ।

वैसे तो गुरु-निर्णय ही पाठ-भेदों के समाधान में अन्तिम प्रमाण है और उसी के अनुसार लोग-ऐसे मन्त्रों को प्रयोग में लाते हैं और सफल होते हैं । तथापि शोध-कर्ता साधकों को इस सम्बन्ध में यत्न-शील होना चाहिये । 'मन्त्र-कोष' का प्रकाशन कर 'चण्डी कार्यालय' द्वारा इस दिशा में उत्तम प्रयास किया गया है । उसमें प्रकाशित 'माला-मन्त्र' का एक रूप १३० अक्षरों का इस प्रकार भी मिलता है—

ॐ ह्रीं नमः कृष्ण-वाससे शत-सहस्र-हिंसिनि सहस्र-वदने महा - बले अपराजिते काल - रात्रि प्रत्यङ्गिरे पर-सैन्य-पर-कर्म-विध्वंसिनि पर-मन्त्रोत्सादिनि सर्व-भूत-दमनि सर्व-देहान् बन्ध-बन्ध सर्व-विद्यां छिन्धि छिन्धि क्षोभय क्षोभय पर-तन्त्राणि स्फोटय स्फोटय सर्व-शृङ्खलां त्रोटय त्रोटय ज्वल - ज्वाला विद्युज्जिह्वे कराल-वदने प्रत्यङ्गिरे ह्लीं नमः ।

पाण्डुलिपि का १६१ अक्षरोंवाला मन्त्र १८ भुजा रौद्री प्रत्यङ्गिरा है, अजिता है । यह शाबर नहीं है, सु-संस्कृत है । यह सभी माला-मन्त्रों में उत्कृष्ट जान पड़ता है ।

पञ्चास्त्रों की तरह ही प्रत्यङ्गिरा का अपना महत्व है । विशेष कर वीर - साधना में इसका सहारा आवश्यक होता है । इसके प्रभाव से मन्त्र-दोषों का भी शमन होता है । अतः स्पष्ट है कि इस सम्बन्ध में शोध की कितनी आवश्यकता है ।

प्राधानिक रहस्य में महा-लक्ष्मी

पण्डित सतीशकुमार उपाध्याय, एम० ए०, ग्राम बँधवा, मेजा रोड, इलाहाबाद

[महा-लक्ष्मी का जो स्वरूप सप्तशती के 'रहस्य-त्रय' के अन्तर्गत वर्णित है, वह वस्तुतः मूल प्रकृति का स्वरूप है। उसी स्वरूप से महा-काली और महा-सरस्वती का आविर्भाव हुआ है। महा-लक्ष्मी के इस स्वरूप की उपासना का उपदेश विरले ही लोगों को परम्परा से प्राप्त है। इस उपासना का पूर्ण विधान शोध की अपेक्षा रखता है। 'भुवनेश्वरी संहिता' में इस स्वरूप का मूल-मन्त्र एकाक्षर बीज 'ह्लीं' निर्दिष्ट किया गया है किन्तु यही बीज महा-विद्या भुवनेश्वरी का भी मूल-मन्त्र है। भुवनेश्वरी के मूल-मन्त्र के रूप में 'ह्लीं'-बीज का विनियोग, ऋष्यादि न्यास, ध्यान और आवरण-पूजनादि विस्तृत रूप में उपलब्ध है किन्तु महालक्ष्मी के मूल-मन्त्र के रूप में उसका वैसा विवरण सुलभ नहीं है। क्या विज्ञ साधक महानुभाव इस सम्बन्ध में अपने विचार प्रस्तुत करने की कृपा करेंगे ?]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि सर्वत्र देवता के रूप दो प्रकार के बताए हैं—१ स्थूल, २ सूक्ष्म। सूक्ष्म रूप उस देवता का चैतन्य स्वरूप है, जो उसके मन्त्र में निहित रहता है। स्थूल रूप उपासकों के कल्याण के लिए हाथ, पैर आदि से युक्त स्वरूप होता है, जिसका ज्ञान उस देवता के ध्यान से होता है। महा-लक्ष्मी के ये दोनों रूप बताते हुए सप्तशती के 'प्राधानिक रहस्य' में ऋषि कहते हैं—

समस्त कार्य-प्रपञ्च या समस्त अवतारों की आद्या अर्थात् सबसे पहले 'महा-लक्ष्मी' आविर्भूत होती हैं। वे त्रि-गुणा हैं—सत्व, रजः और तमो-रूपिणी हैं अर्थात् तीनों गुणों की साम्यावस्था उनकी है। इस प्रकार कार्य-प्रपञ्च (सृष्टि) के उद्भव की कारण-भूता होने से वे परमेश्वरी हैं। 'लक्ष्य' या लक्षणीय माया-रूप और 'अलक्ष्य' या ब्रह्म-रूप दोनों ही प्रकार के रूपोंवाली वे हैं अर्थात् माया-शबल-ब्रह्म-रूपा हैं। वे सारे जगत् को व्याप्त कर विराजमान हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार घटादि कार्य मृत्तिकादि के बिना दृष्टि-गत नहीं होते, उसी प्रकार यह जगत्-रूपी कार्य सच्चिदानन्द-माया-शबल-ब्रह्म के ही द्वारा प्रकट हुआ है। १ अस्ति, २ भाति, ३ प्रिय, ४ रूप और ५ नाम—ये 'अंश-पञ्चक' कहलाते हैं। इनमें से प्रथम तीन तो ब्रह्म-रूप हैं और शेष दो माया-रूप हैं।

इस प्रकार सूक्ष्म रूप ही सबका कारण है। अब मूल-भूत महा-लक्ष्मी का जो प्रथम अवतार प्रधान है, उसका स्थूल रूप बताते हैं—

'मातुलिङ्ग' कहते हैं बीजपूर (बिजौरा) नामक फल को। 'गदा' प्रसिद्ध अस्त्र है। 'खेट' अर्थात् ढाल। 'पान-पात्र' चषक या पीने के पात्र को कहते हैं। इन चारों को महा-लक्ष्मी अपने चार हाथों में लिए हैं। वे अपने मस्तक पर 'नाग', 'लिङ्ग' और 'योनि' को धारण किए हैं।

सह्याद्रि-खण्ड के रेणुका-माहात्म्य में उक्त आयुधों का क्रम बताया है कि दाहिने नीचे के हाथ में 'पात्र' है और ऊपर के हाथ में कामोदकी गदा, बाँयें ऊपरी हाथ में 'खेटक' या ढाल है और नीचे के हाथ में 'श्री-फल' है।

उक्त आयुधादि के भावार्थ 'भुवनेश्वरी-संहिता' में दिये हैं। 'मातु-लिङ्ग' से कर्मों का समूह समझना चाहिये अर्थात् सभी कर्मों का फल देनेवाली भगवती ही हैं। 'गदा' क्रिया-शक्ति को सूचित करती है अर्थात् भगवती में ही क्रिया-स्वरूपा विक्षेप-शक्ति विद्यमान है। 'खेट' ज्ञान-शक्ति का बोधक है अर्थात् भगवती भक्त को सद्-भाव देकर आवरणों का निवारण करती हैं। 'पान-पात्र' तुर्य-वृत्ति का द्योतक है

 (शेष पृष्ठ ८ पर)

'निदान' या 'संकेत' का निरूपण

निदान 'सङ्केत' का पर्याय है अर्थात् सङ्केत से तत्व का बोधन ही निदान है। सर्व - प्रथम वर्ण अर्थात् रङ्ग का निदान किया जाता है। निम्न तालिका से विदित होता है कि किस वर्ण (रङ्ग) से किन भावों का द्योतन होता है—

कृष्ण-वर्ण—शोक, कष्ट, असाध्य, तमः, तमो-गुणादि।
लोहित-वर्ण—साध्वस, उत्तेजना, विजय, हर्ष, सौभाग्य, उष्णत्व, रजो-गुणादि।
नील-वर्ण—आकाश-वर्ण, व्याप्ति, शुद्ध सत्व-गुणादि।
पीत-वर्ण—विभव, ऐश्वर्य, भोग, स्तम्भन, श्री, रजो-गुणादि।
हरित-वर्ण—निरुपद्रवता, अनिष्ट-नाश आदि।
इन्द्रनील-वर्ण—अन्तर्लीनता, अन्तर्मुखता, मुक्ति आदि।
स्वर्ण-वर्ण—वैभव, श्री, प्रभाव, सौभाग्य, आरोग्य आदि।
श्वेत-वर्ण—कीर्ति, सुख, सत्व-गुण, शान्ति, प्रकाश, स्वच्छता, सारल्य आदि।

इस प्रकार एक वर्ण से बहु प्रकार के विषयों का निदान अनुभव होने से स्थान-विशेष पर वर्ण-प्रयोग का प्रयोजन अमुक विषयक है, इसका निर्णय परम्परा और व्यवहार द्वारा करके निदान निश्चित करना चाहिये। स्थान, काल और सन्दर्भ पर ध्यान देने से ही विविध वर्णों का वास्तविक भाव समझ में आता है।

विविध वर्णों के ही समान विभिन्न फलों, पुष्पों, वनस्पतियों, शस्त्रास्त्रों, प्राणियों और शरीर के अङ्गों आदि के भी साङ्केतिक प्रयोग ऋषियों द्वारा बहुधा किए गए हैं। इन सबके रहस्य को न जान कर प्राचीन 'मूर्ति-कला' को देखकर कुछ लोग, वास्तविक अर्थ को नहीं समझ पाते और उल्टा-सीधा तात्पर्य निकाल कर भ्रम में पड़ जाते हैं। सावधानी से मनन करनेवाले गूढ़ अर्थ को समझकर प्राचीन कलाओं के प्रति नत-मस्तक ही होते हैं। किसी मूर्ति - कला से ब्रह्म - ज्ञान होता है, तो किसी से इतिहास का, किसी से काव्य का और किसी से व्यावहारिक ज्ञान मिलता है। मूर्ति के समान ही 'यन्त्र-कला' में भी साङ्केतिक रूप से यही विषय स्पष्ट हुये हैं।

'देव-मूर्तियाँ' बहुत प्रकार की होती हैं। किसी मूर्ति के कुछ हाथ होते हैं तो किसी के कुछ—इस प्रकार शरीर के अङ्गों में न्यूनता या आधिक्य, तो किसी में विभिन्न प्राणियों के अवयवों का सम्मिश्रण दृष्टिगत होता है। किसी देवता का पुं-रूप, किसी का स्त्री-रूप, किसी का बाल्य-रूप, किसी का युवा तो किसी का वृद्ध-रूप प्रतीत होता है। इसी प्रकार आसन, वेष, वर्ण भिन्न-भिन्न दिखाई देते हैं। 'यन्त्र' के आकार भी बहुत प्रकार के होते हैं। इस प्रकार की प्रत्येक 'मूर्ति', 'यन्त्र' और 'मन्त्र' विभिन्न सांकेतिक रहस्यों को सूचित करते हैं। सभी मूर्तियों और यन्त्रों का रहस्य जानना किसी एक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं है। अपनी-अपनी गुरु-परम्परा से मन्त्र-यन्त्र-ध्यान-संकेत जाना जाता है। मन्त्र-यन्त्र-ध्यानादि ग्रन्थों में मिल जाते हैं किन्तु उनके संकेतों का ज्ञान नहीं होता। ऐसे कुछ संकेतों की तालिका आगे उद्धृत है—

वस्तु	निदान
वरद मुद्रा	अभीष्ट-सिद्धि
अभय-मुद्रा	निर्भयता
ज्ञान-मुद्रा	ज्ञान
खड्ग	वामे ज्ञान, दक्षिणे सिद्धि—क्वचिद् मारण
अंकुश	स्तम्भन, आकर्षण
पाश	वशीकरण
नाग-पाश	विष, मारण
परशु	आग्नेय-ताप
शूल	वायव्य-ताप
शक्ति	बल
घण्टा	अनाहत-नाद, नाद-ब्रह्म
शङ्ख	प्रतिध्वनि, अनाहत-नाद
तीक्ष्ण वाण	पाप-मोचक
पुष्प-वाण	जृम्भण
वंश-धनु	ज्ञान, वैराग्य
इक्षु-धनु	मोहन
तुला	विवेक
त्रिशूल	त्रिविध उत्पात-नाशक
गदा	स्तम्भन, वीरत्व, वैराग्य, ब्रह्म-ज्ञान
सुवेणु (वशी)	आकर्षण, मोहन, निनाद
वीणा	निनाद, आहत नाद, गान
खट्वाङ्ग	ताप-त्रय-नाशक
कुम्भ	सकल ऐश्वर्य
कलश	श्री
असि	विजय
खेटक	रक्षा
श्वेत कपाल पात्र	सत्व गुण, ज्ञान
श्वेत-कपाल-पात्रस्थ मद्य	ज्ञान, जीवन
चवक	पोषक, पोषण
चवक मद्य	तृप्ति, दर्प, मोह
कमल	पृथ्वी, ब्रह्माण्ड, हृदय- स्थल
रक्त-कमल	पृथ्वी, ब्रह्माण्ड, श्री, शोषण
श्वेत-कमल	ब्रह्म-रन्ध्र, बुद्धि, विद्या, सन्दीपन
नील-कमल	ज्ञान, मोक्ष, निर्वाण-पद, तापन
रक्त-करवीर पुष्प	पौरुषेय, मोहन

श्वेत करवीर पुष्प	कामना-पूर्ति
सहकार	मादन
अष्टदल-पद्म	अष्ट-सिद्धि, हृत्पुण्डरीक
मातुलुङ्ग	भोग, ऐश्वर्य, विभव
यज्ञोपवीत	धर्म
कुश-मुष्टि	वैराग्य
दूर्वा-मुष्टि	आरोग्य
पारिजात पुष्प	शीतोष्ण सुख-दुःख-समता
पुस्तक	विद्या, ज्ञान
अक्ष-माला	मोक्ष, मन्त्र-शक्ति, विश्व-चक्र, घूर्णन-क्रिया, प्राणाः
मुण्ड-माला	अक्षर-लिपि, विवेक-सहिता बुद्धि
वन-माला	वैराग्य
भूषण	रजो गुण, साम्राज्य
मुकुट	राज-चिह्न, साम्राज्य
खण्ड-चन्द्र-मुकुट	अमृत, नाद, विमर्श
पूर्ण-चन्द्र-मुकुट	अमृत, विन्दु, प्रकाश
नाग-भूषण	शीतलीकरण, परमौषधि
रक्त-वस्त्र	रजोगुण, सौभाग्य, साध्वस
श्वेत-वस्त्र	सत्वगुण, कीर्ति, शान्ति
नील-वस्त्र	तमो गुण, सत्व गुण, व्याप्ति
हरित-वस्त्र	निरुपद्रवता
पीत-वस्त्र	विभव, स्तम्भन
कृष्ण-वस्त्र	तमोगुण, निद्रा, आलस्य, अविद्या, मृत्यु
काषाय-वस्त्र	वैराग्य
दिग्वस्त्र	मायातीत
मुक्त-केश	निर्विकार
बद्ध-वेणि	प्रपञ्च
क्रोध-मुख	तमोगुण, कष्ट
रुदित	तमोगुण, क्षुत्, तृषा, तृष्णा
अट्टहास	परमानन्द
मन्द-स्मित	रजो गुण, आनन्द
दर्शित-दन्त हसित	सत्व-गुण, आनन्द
हंस	जीव
मयूर	चैतन्य
चैत्य	चित्त
सिंह	महत्त्व, नृपत्व, ज्ञान

गौः (धेनु)	पृथ्वी, लोक-लोकान्तर
वृषभ	धर्म
वानर	कुण्डलिनी शक्ति, साहस, उत्साह
हस्ती	आधार-शक्ति, वैभव, राज-चिह्न
अश्व	वेग-शक्ति, तेज, किरण
ऋक्ष	भूचर-शक्ति
मकर	जलचर-शक्ति
गरुड	खेचर-शक्ति
शुक	वाग्मिता-शक्ति
शिवा	धी - शक्ति, बुद्धि
द्वीपी	योग-शक्ति
व्याघ्र	अष्टाङ्ग-योग
वराह	आधार-शक्ति
महिष	काल, लय-शक्ति
मत्स्य	सगुण
शव	अचर, जड़, ब्रह्म
श्मशान	शून्याकारी, तेज -पुञ्ज, केवल-प्रकाश
दन्त	सत्व गुण
घोर-दंष्ट्रा	केवल सत्व गुण
मिलित-दन्त	प्रपञ्चात्मक सत्व गुण
कृष्ण-दन्त	तमोगुण
जिह्वा	रजोगुण, षड्-रस, स्वाद
मुण्ड	बुद्धि, विवेक, ज्ञान
कर्ण	श्रुति, श्रवण-शक्ति, नाद
नेत्र	संसार, दृष्टि, ईक्षण-शक्ति, बिन्दु
त्रिनेत्र	बिन्दु-त्रय, सूर्येन्द्वग्नि—त्रय-प्रकाश
युवावस्था	स्थिति-कला, अनुग्रह-कला, अन्तर्लीन कला
बाल्यावस्था	सृष्टि-कला
वृद्धावस्था	अन्तर्लीन-कला, संहार-कला
रजस्वलावस्था	अनुग्रह-कला, विश्व-सोम
हस्त	आत्मा, कर्म
कर-मेखला	अन्तर्लीन-कला
किङ्किणी	नाद-ब्रह्म
तुङ्ग-कुच	पोषक, पालक, स्थिति-कला,
कुच-भर-नति	कुल-कुण्डलो, संहार-कला, मोक्षदा, मोचिका
ध्वज	राज-चिह्न, राष्ट्र, रजोगुण

यम-दण्ड	मृत्यु, काल, संहार-कला
अग्नि-ज्वाला	प्रकाश
दण्ड	शासन, राज-चिह्न
वज्र	ऐन्द्र-पात
छत्र	राज-चिह्न, रजोगुण, व्यापकता
चामर	राज-चिह्न, रजोगुण, पञ्च-प्राण
कर्तरी	अभय, विद्वेषण
पुष्प-माला	लक्ष्मी
मुद्‌गर	ज्ञान, वैराग्य
नदी	वैराग्य, ब्रह्म-ज्ञान
चक्र	संसार-चक्र, रक्षा
पर्वत	आधार-शक्ति, प्रचुरता
तर्जन	सावधान
कुक्कुट	वशीकरण-शक्ति
कुकुर	नैतिकता
षडस्त्र	षड्-रस
अष्टास्त्र	अष्ट-सिद्धियाँ
कमण्डलु	पवित्रता, तीर्थ
स्रुक्, स्रुव	तृप्ति, यश
दर्वि, तर्दू, व्यञ्जन-पचनी (कटाह-भेद)	तृप्ति, पोषण
मृग	मन
कूर्म	आधार-शक्ति
वृक्ष	रक्षा, आरामः
डमरु	प्रतिध्वनि, अक्षर, सर्व-नाद
भुशुण्डी, परिघ	विकर्षण-शक्ति
शतघ्नी	महा-नाद, अन्त–र्लीन-क्रिया
रथ	परिवर्तन-शील
सिंहासन	राष्ट्र, साम्राज्य, नायकत्व
शूर्प, मार्जनी	लक्ष्मी-नाश
दध्यक्षत	सौभाग्य
माष-भक्त	ग्रह-शान्ति
कज्जल	मोहन
वसु-पात्र	लक्ष्मी, सौभाग्य
आदर्श	श्री, कान्ति
धान्य-मंजरी	पोषण
मूषिक	सर्वंग-शक्ति

उलूक	वैभव, ध्यान
सपरीत-रतासन	पूर्वाम्नाय-सूचक, सर्ग-प्रवृत्त शिव-शक्त्यात्मक ब्रह्म
विपरीत-रतासन	दक्षिणाम्नाय सूचक, स्थिति-प्रवृत्तोक्त ब्रह्म
मृगादिक-रतासन	पश्चिमाम्नाय-सूचक, संहार-प्रवृत्तोक्त ब्रह्म
ताण्डव-रतासन	उत्तरानमय-सूचक, अन्तर्लय प्रवृत्तोक्त ब्रह्म
चणकाकृति-रतासन	ऊर्ध्वाम्नाय-सूचक, अनग्रह-रूपोक्त ब्रह्म
चुम्बनादि रतासन	अधराम्नाय-सूचक, विश्रान्ति-रूपोक्त ब्रह्म

जिस प्रकार आज शक्ति के प्रमाण को जानने के लिये अश्व-शक्ति (हॉर्स पावर) का व्यवहार किया जाता है, उसी प्रकार ऋषियों की आर्ष-पद्धति में 'हस्त' (हाथ) को आत्म-बल और अकर्म-बल का प्रमाण माना जाता है। इसी प्रकार विद्युत्-तेज का प्रमाण जानने के लिए सिक्थ दीप (कैण्डल पावर) का व्यवहार किया जाता है, तद्वत् आर्ष पद्धति में 'शिर और मुख' बुद्धि, विवेक तथा विचार के प्रमाण-सूचक हैं। जिस-जिस जीव के जितने और जैसे मुख होते हैं, उन्हीं के निदानानुसार उसकी बुद्धि, रूप और शक्ति का प्रमाण होता है।

[पृष्ठ २ का शेषांश]

अर्थात् भगवती निरन्तर स्वात्मानन्द के अनुभव-रूपी रस का पान करती रहती हैं। 'लिङ्ग' पुरुष का सूचक है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार 'योनि' से प्रकृति का बोध होता है। 'नाग' काल का सूचक है, जो पुरुष और प्रकृति दोनों का संयोजक है। इस प्रकार पुरुष, प्रकृति और काल—इन तीनों का अधिष्ठान ब्रह्म-रूपिणी परमेश्वरी हैं।

वहीं यह भी उल्लिखित है कि नवार्ण मन्त्र के मध्य में जो माया-वीज (ह्रीँ) है, वही 'महा-लक्ष्मी' का मन्त्र है। तन्त्रों के अनुसार यही महा-विद्या भुवनेश्वरी का मन्त्र है। इस प्रकार भगवती भुवनेश्वरी और भगवती महा-लक्ष्मी का सूक्ष्म-रूपेण एकत्व बोध होता है क्योंकि दोनों का ही मन्त्र माया-वीज कहा गया है किन्तु स्थूल-रूप से भिन्नता है, जैसा कि दोनों के ध्यान से विदित होता है। भगवती भुवनेश्वरी 'पाशांकुश-भय-वरा' हैं, जब कि भगवती महा-लक्ष्मी 'मातुलिङ्ग-गदा-खेट-पान-पात्र-धारिणी' हैं। तथापि ध्यान के इस अन्तर से उनमें भेद नहीं समझना चाहिये। तत्वतः दोनों एक ही हैं।

भगवती महा-लक्ष्मी के वर्णालङ्कार को बताते हुये कहा है कि वे तपाए हुये स्वर्ण-जैसी अर्थात् रक्त-वर्णा हैं और वैसे ही भूषण अर्थात् रक्त - वर्ण के गहने पहने हैं। स्वतः सत्ता से शून्य जगत् को अपनी सत्ता से वे पूर्ण कर रही हैं अथवा अपने तेज से—अपने प्रतिबिम्ब के चिदाभास से वे शून्य जगत् को परिपूर्ण करती हैं। 'विष्णु-पुराण' में कहा है कि पृथिवी जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश अव्यक्त पुरुष निष्कल ब्रह्म में लय को प्राप्त होते हैं। यहाँ 'अव्यक्त' ही प्रकृति है। 'वायु-पुराण' में बताया है कि—'अव्यक्तं प्रकृतिर्मयेति।' इसी प्रकृति या माया का सूचक 'माया-वीज' (ह्रीं) है। इस वीज के अनेक नाम हैं—देवी-प्रणव, शक्ति-प्रणव, शक्ति-बीज, परा-वीज, त्रिगुणा, माया, परा-शक्ति इत्यादि। तन्त्रों में प्रणव (ॐ) को भी इसी का वाचक बताया है। देखें, 'प्रपञ्चसार तन्त्र', प्रथम पटल।

आद्या मूल-प्रकृति-स्वरूपा महा-लक्ष्मी के चतुर्भुज स्वरूप एवं उसके एकाक्षर मूल-मन्त्र—माया-बीज (ह्रीं) की उपासना के विधान पर सहृदय साधक ही प्रकाश डाल सकते हैं।

महा-विद्या-सूत्रम्

[श्री गणपति महामुनि विरचित 'दश महा-विद्या सूत्रम्' आज से लगभग दस वर्ष पूर्व श्री टी० बी० नागराजन, अब रिटायर्ड एडीशनल डिप्टी कम्प्ट्रोलर एण्ड ऑडीटर जनरल ऑफ इण्डिया, १६८६, इल्लरअम्मान कौयल स्ट्रीट, तनजावूर-६१३००१ (ता० ना०) के सौजन्य से हस्त-लिखित रूप में प्राप्त हुये थे। प०पू० 'राष्ट्रगुरु' श्रीपीताम्बरा-पीठाधीश्वर श्री स्वामी जी महाराज को दतिया जाकर इन सूत्रों को दिखाया था। पूज्य श्री ने अपने पुस्तकालय से श्रीमहामुनि की ग्रन्थावलि निकालकर दिखलाई, जिसमें महा-विद्या सूत्रों के अतिरिक्त श्रीगायत्री, योग, श्रीसीता, श्रीकृष्ण, श्रीरुद्र व ईश्वर, सृष्टि तथा राज-योगसार सूत्रों का भी उल्लेख था। श्री स्वामी जी महाराज की आज्ञा से इन सब सूत्रों की वनखण्डेश्वर-स्थान पर एक हस्त-लिपि तैयार कर ली थी। सूत्र अति ज्ञान-वर्धक होने के साथ-साथ साधकों की अनेक भ्रान्तियों का निवारण करने में सक्षम हैं। छपी हुई ग्रन्थावलि की प्राप्ति अति दुर्लभ है। अतः 'चण्डी' के माध्यम से इन्हें साधकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुये श्री जगज्जननी की कृपाकांक्षा करता हूँ।—सीताराम सक्सेना, ८४ सी० बाघम्बरी गद्दी, इलाहाबाद-२११००६]

प्रथमः काली-पटलः

१ कालीं व्याख्यास्यामः।
२ आद्या सा दशसु महा-विद्यासु।
३ क्रिया-शक्तिः काली मध्यमा त्वधि-दैवतम्।
४ सर्व-व्यापिनी।
५ विद्युच्छक्तेर्नाति-रिच्यते।
६ सर्वाणि भूतानि पचत्यजस्रमेषा।
७ पाक एव शास्त्रेषु व्यवह्रियमाणः परिणामः।
८ पाचकत्वमेव कालस्य स्वरूपम्।
९ काल एव स्त्री-लिङ्गेन काल्युच्यते।
१० अभूदनया बहूनामण्डानां संहारः।
११ तस्याः कण्ठेऽस्माभिश्चिन्त्य - माना मुण्ड-माला तदेतदण्ड-संहार-वैभवं स्मारयितुम्।
१२ नित्य-संग्राम-कारणीति पिशाचिकेव भीम-रूपा वर्ण्यंत इयं परिणमयित्री शक्तिः।
१३ अतएव वामैव विभुतेत्याह पुष्प-दन्तः।
१४ महा-कालस्य नित्य-ताण्डवस्य विभुतातः काली नाति-रिच्यते।
१५ क्रियैव ताण्डवमुच्यते।
१६ परिणमयित्री शक्तिर्न केवलं संहरति।
१७ सृजत्यपि।
१८ पूर्व-पूर्वावस्था संहार एवोत्तरोत्तरावस्था सर्गो भूतानाम्।
१९ एकैव क्रिया द्व्यर्थ-करीत्युक्तं भवति।
२० एतेन कालस्य कारणत्वं व्याख्यातम्।
२१ अहमेव वात इव प्रवाम्यारम्भमाणा भुवनानि विश्वेति मन्त्र-वर्णोऽत्र भवति।
२२ ईशस्य परम-कारणत्वं तद्वत्वात्।
२३ एषा परिणमयित्री समष्टि-शक्तिः भूतान्याविश्य व्यष्टि-शक्तिश्च भवति।
२४ तत्र तारतम्यमुपाधि-भिदात् तेजस इव सूर्यादौ।
२५ भूतान्तरापेक्षया चेतनानां तच्छक्ति - वाही स्वभावो भूयान्।
२६ अस्मासु प्रवहन्ती सा शक्तिः कुण्डलिन्युच्यते।
२७ सा हि श्रेष्ठं प्राणमाविश्य क्रियाशक्तिर्भवति पुरः।
२८ श्रेष्ठे शक्तौ च प्राण-व्यवहारः उपनिषत्सु दृश्यते।
२९ इन्द्रिय-सह-पाठे श्रेष्ठ-परः।
३० परत्वेन स्तुतौ शक्ति-परः।
३१ प्राण-तरङ्गा एवोच्छ्वासादयो न प्राण-स्वरूपं।
३२ न वायु - क्रिये पृथगुपदेशादिति बादरायणस्य सूत्रमत्र भवति।

३३ संसारिणां प्राण-शक्तिः प्रति-क्षणं विनियोग-वैषम्येण क्षीयते ।
३४ मुहुर्मुहुः श्वास-विसर्गाश्च ।
३५ आत्म-शक्तेर्वृद्धये कालीमुपासीत ।
३६ रसज्ञया ।
३७ ज्ञानतः श्वसनं तस्याः शुद्धमुपासनम् ।
३८ ज्ञायमाना क्रिया महा-महिमा स्यात् ।
३९ मनसे शक्तिं दद्यात् ।
४० वाचे शक्तिं दद्यात् ।
४१ चक्षुषे शक्तिं दद्यात् ।
४२ अन्ततो दीर्घ-जीवितं च दद्यात् ।
४३ मुक्तये चैषा विद्या भवति ।
४४ इयं संवर्ग-विद्योपनिषत्सु गीयते ।
४५ प्राण-विद्या कैश्चित् ।
४६ मुख्य-प्राणोद्गीथ-विद्या परैः ।
४७ संसारिणः प्रहरत् खड्गं काली ।
४८ योगिनां हस्त-गतं खडगम् ।

।। काली-पटलः समाप्तः ।।

द्वितीयः तारा-पटलः

१ तारां व्याख्यास्यामः ।
२ द्वितीया सा दशसु महा-विद्यासु ।
३ शब्द-शक्तिस्तारा मध्यमा त्वधि-दैवतम् ।
४ शब्द-शक्तिश्च प्रणवान्नाति-रिच्यते ।
५ तां पश्यन्तीमाहुः ।
६ तार इति प्रणवस्य प्रसिद्धं नाम ।
७ तार एव स्त्री-लिङ्गेन तारोच्यते ।
८ इयं नाकाशस्य ।
९ अपि त्वाकाशे चरति ।
१० ओंकारस्तु तदनुकरण-मात्रम् ।
११ न स्वरूपम् ।
१२ खण्डत्वात् ।
१३ प्रणवो ह्य-खण्डः ।
१४ तारैव नीलोच्यते तामसीति ।
१५ तामसत्वं चात्राव्यक्तत्वम् ।
१६ एतेन रुद्रस्य तामसत्वं च व्याख्यातम् ।
१७ पावनेभ्यश्च पावनी भवत्येषा ।
१८ यदियमीश्वरस्यासाधारणं नाम ।
१९ तस्य वाचकः प्रणवः इति पतञ्जलिरत्र भवति ।
२० तदनभिज्ञस्य सर्वे मन्त्रा व्यर्थाः ।
२१ ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्निति मन्त्रे यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यतीति पादोऽत्र भवति ।
२२ इयं व्यक्त - शब्दानाविश्य व्यष्टि - शक्तिश्च भवति ।
२३ प्रणव-वाहित्वे शब्देषु तार-तम्यम् ।
२४ ध्वनिभ्यो वर्णेषु अधिकत्वम् ।
२५ तत्रापि वैदिक-पद-घटितेषु ।
२६ तदनुगत सुख-श्रेणी - समर्पित - नाद-विशेषतः प्रणवाभिव्यक्तिः ।
२७ एतेन मन्त्र-स्वर-रक्षा-प्रयोजनं व्याख्यातम् ।
२८ मन्त्राणां भाषान्तरी - करणे गूढ़ार्थ-समर्पण प्रयोजनम् ।
२९ न जपोपयोगित्वम् ।
३० अस्फुट-प्रणवत्वात् ।
३१ ऋषीणां तपसि प्रणव - समुद्रान्निर्गतास्तरङ्गा मन्त्राः ।
३२ तत्रर्षीणां वाग्-जलस्य कुल्येव प्रवहण-भूः ।
३३ पुरुष-यन्त्र-ग्रथिता लौकिकाः शब्दाः ।
३४ सत्यामपि स्फुट-प्रणव-शब्द-ग्रथने नास्ति पुरुषस्य शक्तिः ।
३५ यया सत्यामपि भूत-सामग्र्यां शिल्पिनो न प्राण-निर्माण-शक्तिः ।
३६ अधि-भूतमध्यात्मं च वागेव तारा ।
३७ सत्या समष्टि-वाक् ।
३८ व्याख्यातं नीलात्वं तस्याः ।
३९ सैव ऋषि-वाक्-कुल्या द्वारा व्यक्ता त्रयी ।
४० तां शुक्लामाहुः ।
४१ इत्यधि-भूतम् ।
४२ अथाध्यात्मम् ।
४३ सत्यासत्या लौकिकी वाक् चित्रा ।
४४ महज्जिगमिषुणाति-सृष्टिकोपास्या ।
४५ ताराया एव शुक्ला चित्रोपासनमिति ।
४६ ताराया होमे विभूती ।

४७ प्रणव-माया-स्त्री-कूर्चास्त्रैस्तारामुपासीत ।
४८ माया-स्त्री-कूर्चास्त्रैर्वा ।
४९ माया-स्त्री-कूर्चैर्वा ।
५० शुद्धेन प्रणवेन वा ।
५१ उपासनं तु तस्या अन्तरव्यक्ते शब्दे स्थितिः ।
५२ मनसा मन्त्रानुसन्धानादव्यक्त-शब्द-निष्ठा ।
५३ अनुज्ञामुदया वा ।
५४ इयं अक्षर-विद्योपनिषत्सु गीयते ।
५५ उद्गीथ-विद्या कैश्चित् ।
५६ नानृतं वक्तव्यम् ।
५७ सत्यमेव वक्तव्यम् ।
५८ स्वाध्यायोऽध्येतव्यः ।
५९ एतत् समासतः शुक्लायापासनम् ।
६० चित्रोपास्या पर-मुख-विहारिणी ।
६१ निन्दायां स्तुतौ च ।
६२ असम्बन्ध-प्रलापेषु काव्येषु च ।
६३ अप-स्वरे सु-स्वरे च ।
६४ रोदने गाने च ।
६५ तुल्यं नादं गृह्णीयात् ।
६६ न पराङ्मुखो भवेत् ।
६७ न चाभि-मुखः ।
६८ एतच्चित्राया उपासनम् ।
६९ जिह्वा - रसस्य स - रसत्वोप - कल्पनात् तत्-सङ्गिन्याः सरस्वतीति नाम् ।

॥ तारा-पटलः समाप्तः ॥

तृतीयः सुन्दरी-पटलः

१ सुन्दरीं व्याख्यास्यामः ।
२ तृतीया सा दशसु महा-विद्यासु ।
३ सुन्दर्येव त्रिपुर-सुन्दरी ।
४ ज्ञान-शक्तिः सुन्दरी मध्यमा त्वधि-दैवतम् ।
५ शब्द-शक्तौ ज्ञानच्छाया-श्लेषः ।
६ अतो ज्ञान-शक्तिरिव साऽपि ।
७ तस्मान्नाति-प्रसङ्गः ।
८ धर्मिणो ज्ञानस्य धर्मो ज्ञानमियमित्येके ।
९ दीप-प्रभयोस्तेजस्त्वमिवोभयोर्ज्ञानत्वम् ।
१० [ ] तरामभेदे इत्यन्ये ।
११ अधिष्ठानत्वेन व्यवहारे तदेव धर्मी ।
१२ शक्तित्वेन धर्मः ।
१३ राहोः शिर इति वद्वाभेद-व्यवहारः ।
१४ अन्तर-साखा-भेदेनेति वासिष्ठः ।
१५ अस्याः संविदोऽध्यात्मं प्रथमं पुरं चक्षुर्जागरिग-स्थानम् ।
१६ फलस्थेन्द्र-धनुः-प्रभेति नामनी अतः भवतः ।
१७ द्वितीयं शिरस्तैज-स्थानम् ।
१८ विशुद्ध-चक्रमित्येके ।
१९ शङ्खिन्युभय-सम्बद्धेति वासिष्ठः ।
२० शिर-स्थिता चन्द्र-निभेति नामनी अत्र भवतः ।
२१ तृतीयं हृदयं प्राज्ञ-स्थानम् ।
२२ हृदयस्था रवि-प्रख्येति नामनी अत्र भवतः ।
२३ उपनिषदि चायमावसथ इति त्रिरभ्यस्तं स्थान-त्रय-प्रदर्शनाय ।
२४ एवं संविदस्त्रिपुरा त्वं व्याख्यातम् ।
२५ अथाधि-दैवतम् ।
२६ सूर्यस्य मण्डलं प्रथमं पुरम् ।
२७ चन्द्रस्य द्वितीयम् ।
२८ अग्नेस्तृतीयम् ।
२९ द्वितीयं पुरं गगनमित्येके ।
३० अध्यात्मादि दैव - साधारण्येन त्रीणि पुराणि परेषाम् ।
३१ तन्मते गगनं प्रथमं पुरं ।
३२ सूर्य-मण्डलं द्वितीयम् ।
३३ हृदयं तृतीयम् ।
३४ सर्वोत्कृष्ट-प्रकाशत्वात् सुन्दर्येषा ।
३५ तस्य भासा सर्वमिदं विभातीति श्रुतिरत्र भवति ।
३६ ज्ञान-प्रदर्शनाय विषय-ज्ञान-निरूपणम् ।
३७ यथाग्नि-प्रदर्शनायाङ्गार-निरूपणम् ।
३८ महा - वाक्ये प्रज्ञान - शब्दस्य विषय - ज्ञानं वाच्योऽर्थः ।
३९ शुद्ध-ज्ञानं लक्ष्यः ।
४० विषयोप-रक्तं ज्ञानं विज्ञानम् ।
४१ निर्विषयं वस्तु ।

४२ क्रिया-तटस्थं लक्षणं ब्रह्मणः ।
४३ ज्ञानं स्वरूप-लक्षणम् ।
४४ मुमुक्षुः सुन्दरीमुपासीत ।
४५ सर्वज्ञत्व-कामो वा ।
४६ वाक्-काम-शक्तिभिः ।
४७ ब्रह्म-योनि-शतीन्द्र-मायाभिः ख-भृगु-ब्रह्म-खेन्द्र-मायाभिर्भृगु-ब्रह्मेन्द्र-मायाभिश्च वा ।
४८ तामिमां श्रीविद्यामाहुः ।
४६ श्रासुर्येषा गायत्री ।
५० तन्त्राणां सारः ।
५१ रमान्त्या वा श्रीविद्या ।
५२ प्रणव-माया- श्री-पूर्वया श्री-माया - काम-वाणी-शक्ति-सम्पुटितया श्रीविद्यया वा ।
५३ शुद्धमुपासनं ज्ञान-मूल-गवेषणम् ।
५४ प्रत्यग्-गत्याऽहं स्फूर्तावतरणं वा ।
५५ इयं वैश्वानर-विद्येत्युपनिषदि गीयते ।
५६ आत्म-विद्यैव वैश्वानर-विद्या ।
५७ आत्मा हि वैश्वानरः ।
५८ आत्मानं जानता गृह्य-माणा अपि विषया भेदेन नानुभूयन्ते ।

॥ सुन्दरी-पटलः समाप्तः ॥

चतुर्थः भुवनेश्वरी-पटलः

१ अथ भुवनेश्वरीं व्याख्यास्यामः ।
२ चतुर्थी सा दशसु महा-विद्यासु ।
३ भुवनेश्वर्येव नामान्तरेण माया ।
४ ईक्षा-शक्तिर्भुवनेश्वरी मध्यमा त्वधि-दैवतम् ।
५ ज्ञानस्य निमित्त-भूतः पूर्वो व्यापार ईक्षा ।
६ ईक्षा-शक्तिरिच्छा-शक्तिरित्यनर्थान्तरम् ।
७ क्वचिद् दीक्षा-पूर्विका सृष्टिः प्रदर्श्यते ।
८ क्वचिदिच्छा-पूर्विका ।
६ अविशेषादेव द्वयोः ।
१० ईशस्येक्षैव विशालो देशः ।
११ प्रति-दर्शक - यन्त्रे यावद् दृष्टिमति - विशालं पश्यामो देशम् ।
१२ स च देशो न यथार्थः ।
१३ अस्मद्-दृष्टेर्नाति-रिच्यते ।
१४ विमले जले पश्यामो महान्तमाकाशम् ।
१५ सह सूर्येण दिवा ।
१६ सह नक्षत्रैः सह चन्द्रमसा च निशि ।
१७ स च देशो न यथार्थः ।
१८ अस्मद्-दृष्टेर्नाति-रिच्यते ।
१६ स्वप्न-देशश्चैवम् ।
२० यावती दृष्टिस्तावान् देशो भवति ।
२१ ईश्वरस्य दृष्टिरपारा ।
२२ तस्माद् विश्वस्य देशश्चापारः ।
२३ अपारश्च देशः परमाकाशान्नाति-रिच्यते ।
२४ तस्माद् भुवनेश्वरी परमाकाशः ।
२५ विश्वस्मिन् परमाकाशो भित्ति-स्थानीयः ।
२६ क्रिया-शब्द-विज्ञानानि चित्र-स्थानीयानि ।
२७ तस्माद् भुवनेश्वर्यां पूर्वाः प्रति-तिष्ठन्ति ।
२८ विश्वं प्रति-तिष्ठतीत्युक्तं भवति ।
२६ ईक्षा-वल्यां मूलमिच्छा ।
३० आद्या दृष्टिरिच्छेत्युक्तं भवति ।
३१ प्रति-दृष्टिश्चेच्छास्तीत्येके ।
३२ रसानुभूत्यौदासीन्याभ्यां तद्भावा-भाव-निर्णयो लोके ।
३३ ईश्वरे च तथा स्यात् ।
३४ सर्व-रसानुभूतिमानीश्वर इत्येकः पक्षः ।
३५ असङ्ग इत्यन्यः ।
३६ परमाकाश एवादितिरुच्यते ।
३७ अखण्डत्वात् ।
३८ ईश्वरः कश्यप उच्यते ।
३६ पश्यतीति ।
४० अदितिः सर्वेषां देवानां माता ।
४१ कश्यपः पिता ।
४२ तन्नाम्ना मुनि-दम्पत्योर्व्यवहारः ।
४३ तौ न देवानां माता-पितरौ ।
४४ अस्यामेव शक्त्यां सर्वं भुवनमोत-प्रोतं च ।
४५ आकाशे खलु गार्गीति श्रुतेः ।
४६ तथोपलब्धेश्च ।
४७ तस्माद् भुवनेश्वरीयमुच्यते ।
४८ भुवनमप्येषैव भवति ।

४९ प्रकृतित्वात् ।
५० प्रकृतित्वं चास्या मूल-दृष्टिरिति ।
५१ एवं जगतो दृष्टि-मूलकत्वं व्याख्यातम् ।
५२ अस्मद्-दृष्टिरेव सृष्टिरिति परे ।
५३ स्वप्न-सृष्टिरेव सा ।
५४ अस्माच्छब्दस्य ब्रह्म-परत्वे तु न वि-प्रतिपत्तिः ।
५५ त्रयाणां व्यापकत्वे प्रमाणानि दृश्यन्ते ।
५६ अदितिर्जातमदितिर्जनित्वमिति देशस्य ।
५७ यमो ह जातो यमो ह जनित्वमिति कालस्य ।
५८ पुरुष एवेदं सर्वमिति पुरुषस्य ।
५९ देश-व्यापकत्वम् वैशाल्यमिव विश्वस्य ।
६० दैर्घ्यमिव काल-व्यापकत्वम् ।
६१ स्वरूपमिव पुरुष-व्यापकत्वम् ।
६२ तस्मान्न वि-प्रतिषेधः ।
६३ भुवनेश्वरी परमा शान्ता ।
६४ सर्वाभ्यः क्रियाभ्य आत्मानं समर्प्य निश्चला तिष्ठति ।
६५ परमां शान्तिं कामय - मानो भुवनेश्वरी-मुपासीत ।
६६ मायया ।
६७ प्रणव-संपुटितया वा ।
६८ द्वितोयश्चिन्तामणिरुच्यते ।
६९ शुद्धमुपासनम् ।
७० दृग् - दृश्ययोरन्तर - भूत आकाश एव सदा द्रष्टव्यः ।
७१ संसारिणां तु दृष्टेर्मार्ग एव नभः ।
७२ न लक्ष्यम् ।
७३ पृथिव्यादुपासनं कष्टम् ।
७४ प्रियाऽप्रियोभयास्पदत्वात् ।
७५ यत्र द्वन्द्वो परमस्तल्लक्ष्यमुत्तमम् ।
७६ तादृश आकाशः ।
७७ आकाशे न कस्यचिद् द्वेषः सङ्गो वा ।
७८ दर्शनादभ्र सदसीति श्लोकोऽत्र भवति ।
७९ अभ्रस्य सदस्त्वं ब्रह्माण्ड-संकीर्णत्वात् ।
८० सेयं हिरण्मयाण्डानां सभा द्यौः कनक-सभोच्यते ।
८१ तत्रेशस्य ताण्डवं काली-पटले व्याख्यातम् ।
८२ दिवं पश्यन् साक्षिणि प्रति-तिष्ठति ।
८३ दृष्ट्यावेव हि तदा दृष्टिः ।
८४ इयं परो वरीयसी विद्योपनिषदि गीयते ।
८५ परो वरीयानुद्गीथ आकाशो हि ।
८६ तत्राकाशमीशमेके व्याचक्षते ।
८७ अभेदात् तद्रुप-पद्यते ।
८८ दृष्टेर्वस्त्वेव हि लक्ष्यार्थः ।

॥ भुवनेश्वरी-पटलः समाप्तः ॥

पञ्चमः भैरवो-पटलः

१ भैरवीं व्याख्यास्यामः ।
२ पञ्चमी सा दशसु महा-विद्यासु ।
३ भैरव्येव त्रिपुर-भैरवी ।
४ परा वाग् भैरवी ।
५ सुन्दर्यास्त्रिपुरात्वेन भैरव्यास्त्रिपुरात्वं व्याख्यातं।
६ सूक्ष्म-शब्द-ज्ञानयोरभेदात् प्रायः ।
७ देवतैक्येऽपि तत्व-विभूति-भेदाद् विद्या-भेदः ।
८ मूलाधारे निष्ठाऽस्याः शुद्धमुपासनम् ।
९ स हि पराया आलयः ।
१० अस्या अपि मन्त्रः श्रीविद्योच्यते ।
११ अत्र ख-भृग्वग्नि-वाग्भिर्युक्ताभिरादि-बीजम् ।
१२ ख-भृगु-कामाग्निभिः युक्तैर्द्वितीयम् ।
१३ ख-भृगु-वह्नि-चतुर्दश-सर्गैर्युक्तैस्तृतीयम् ।
१४ सुन्दर्यामिवात्रापि प्रथमं वाग्-भवं कूटम् ।
१५ द्वितीयं काम-राजं कूटम् ।
१६ तृतीयं शक्ति-कूटम् ।
१७ अनया विद्यया भैरवीमुपासीत मोक्ष-कामः ।
१८ विद्या-कामो वा ।
१९ जात-वेदसस्त्रिष्टुभेमां कष्ट-तरण-कामः ।
२० अस्या एव देव-गण-तृप्तिदं स्वाहेति नाम ।
२१ स्वधेति च पितृ-गण-तृप्तिदम् ।

॥ भैरवी-पटलः समाप्तः ॥

षष्ठः प्रचण्ड-चण्डिका-पटलः

१ प्रचण्ड-चण्डिकां व्याख्यास्यामः ।
२ षष्ठी सा शक्तिर्दशसु महा-विद्यासु ।
३ प्रचण्ड-चण्डिकैव छिन्नमस्ता नामान्तरेण ।

४ काल्यास्तत्वेन प्रचण्ड - चण्डिकायास्वंत्त
५ व्याख्यातम् ।
५ अस्ति कश्चन विशेषः ।
६ सामान्यतः परिणमयिन्ती विद्युच्छक्तिः काली ।
७ प्रभोरायुध-भूता प्रचण्ड-चण्डिका ।
८ अतएव वज्र-वैरोचनीयेति च कथ्यते ।
९ वज्रं ह्यायुधं प्रभोः ।
१० विरोचनस्य शक्तिर्वैरोचनीया ।
११ विशेषेण रोचत इति प्रभुरेव विरोचनः ।
१२ वैरोचनी वा नामतः ।
१३ वैरोचनीं कर्म-फलेषु जुष्टामिति मन्त्रोऽत्र भवति।
१४ अधि-दैवतं तु मध्यमा ।
१५ काली-सुन्दरी - भुवनेश्वरीणां देवता मध्यमा गौरीयं त्विन्द्राणीत्येके ।
१६ नाम-भेद एव न व्यक्ति-भेद इति वासिष्ठः ।
१७ व्यक्ति-भेदे वा वेष-भेद एकस्याः ।
१८ मध्यमश्चेद् भिन्न-वेषो मध्यमाऽपि भिन्न-वेषा ।
१९ अध्यात्ममपि काल्यास्तत्वेन प्रचण्ड - चण्डिकायास्तत्वं व्याख्यातम् ।
२० अस्ति कश्चन विशेषः ।
२१ सामान्यतः प्राणमाविष्टा कुण्डलिनी काली ।
२२ योगिषु सुषुम्नया प्रवहन्ती पश्चात् प्रचण्ड-चण्डिका ।
२३ सुषम्नायां च प्रचण्ड-चण्डिका-व्यवहारः ।
२४ सा योगिषु छिन्न-मस्ता भवति ।
२५ छिन्न-मस्तात्वं च कपाल-द्वय-भेदात् ।
२६ न केवलं मरणे ।
२७ जीवित-कालेऽपि ।
२८ भिन्न-कपालोऽपि योगी जीवितुं शक्नुयात् ।
२९ व्यपोह्य शीर्ष-कपाले इति श्रुतिरत्र भवति ।
३० देव्या एवं छिन्नमस्तात्वं व्याख्यातम् ।
३१ डाकिनी-वर्णिन्यौ देव्याः सख्यौ ।
३२ इडैव डाकिनी ।
३३ पिङ्गलैव वर्णिनी ।
३४ छिन्न मस्तायाः सुषुम्नायाः स्वायत्तत्वात् मस्तकं कर-स्थितमिव स्यात् ।
३५ इदमेव ध्येय-विग्रहे तत्करस्थस्य निज - मस्तकस्य तात्पर्यम् ।
३६ कबन्धादुद्गतं रक्त-धारा-त्रिकं नाडचग्रादुद्गतममृत-धारा-त्रिकम् ।
३७ एकया शिरसस्तर्पणम् ।
३८ इतराभ्यामिडा-पिङ्गलयोः ।
३९ तद-द्वारा सर्वस्य देहस्य ।
४० ध्येय-विग्रहे रति-कामयोः पादाभ्यामवष्टम्भनेन काम-जित्वं शक्तेर्व्यज्यते ।
४१ सिद्धेषु भगवत्या अभिव्यक्तिः ।
४२ यः सिद्धानाराधयेत् स भगवतीं षष्ठीमाराधयति
४३ इत्यध्यात्मम् ।
४४ अथाधि-लोकम् ।
४५ देव-यानः पन्थाः प्रचण्ड-चण्डिका ।
४६ सा जुष्टा कर्म-फलेषु ।
४७ दुर्गा नामान्तरेण ।
४८ दुर्गमा ह्यकृतात्मनाम् ।
४९ आदित्य-मण्डलादस्मत् - सषुम्ना - पर्यन्तमस्ति कश्चन मार्गः ।
५० स चासङ्ख्य-शाखः ।
५१ रश्मयस्तेनायान्ति ।
५२ यावन्तः प्राणिनः तावत्यः शाखास्तस्य पथः शरीर इह रश्मीनामगमनाय ।
५३ सुषुम्नाया एवैषा विभूतिः ।
५४ सुषुम्ना न केवलं शरीर-मात्र-निष्ठा नाड़ी ।
५५ अपि त्वनेकाभिः शाखाभिः प्रपञ्चे स्थिता नाड़ी ।
५६ सा रश्मीनधो नयति ।
५७ ऊर्ध्वं च शुद्धान् प्राणान् मरणे ।
५८ एकैका शाखा तस्या असङ्ख्य-रेणु-मयी ।
५९ सोऽयं देव-यानः पन्था अन्तरिक्षान्नतिरिच्यते ।
६० अतएवान्तरिक्षं महद्व्रज उच्यते महर्षिभिः ।
६१ रेणुका तान्त्रिकैः ।
६२ परशुराम-जननी रेणुका तु तदंशावतारः ।
६३ सा च छिन्नमस्तोच्यते छिन्न-शीर्षत्वात् ।
६४ अस्माकं सुषुम्ना-मार्गे ग्रन्थि-त्रयमस्ति ।

६५ एको मूले ।
६६ स ब्रह्म-ग्रन्थिरुच्यते ।
६७ अपरो मणिपूरे ।
६८ स विष्णु-ग्रन्थिरुच्यते ।
६९ इतर आज्ञा-चक्रे ।
७० स रुद्र-ग्रन्थिरुच्यते ।
७१ तेन ग्रन्थि-त्रयेणास्मासु शक्तिरन्तरिक्षान्न बहुलमवतरति ।
७२ भिन्न-ग्रन्थौ तु बहुलं प्रवहति ।
७३ मार्गस्य निर्निरोधत्वात् ।
७४ सिद्धानां व्यष्टि-नाडी समष्टि-नाड्या मिलिता महा-महिमा स्यात् ।
७५ क्रमेण ग्रन्थीनां मोक्षः ।
७६ रुद्र-ग्रन्थौ भिन्ने कैवल्यं हस्तस्थं स्यात् ।
७७ काश्यां तु मरणान्मुक्तिरिति श्लोकोऽत्र भवति ।
७८ इयमेव काशी यदाज्ञा-चक्रम् ।
७९ अत्र मरणं च ग्रन्थि-भेदः ।
८० कपाल-भेदश्च प्रागुक्तो ग्रन्थि-भेद सापेक्षः ।
८१ योऽन्तरिक्षान्महतीं शक्तिमिच्छति स प्रचण्डचण्डिकामुपासीत् ।
८२ तन्मन्त्रे प्रणवः प्रथमं बीजम् ।
८३ श्रीर्द्वितीयम् ।
८४ माया तृतीयम् ।
८५ वाक् तुरीयम् ।
८६ सप्ताक्षरस्य तन्नाम्नः सम्बोधनं ततः ।
८७ ततः कूर्च-द्वयम् ।
८८ अथास्त्रम् ।
८९ शिरोऽन्ते ।
९० अनया विद्यया नास्ति किंचिदसाध्यम् ।
९१ कूर्च-मन्त्रेण वा ।
९२ अथास्याः शुद्धमुपासनम् ।
९३ अन्तरुष्माणं विचिन्तयेत् ।
९४ अत्र विचिन्तने क्रोध-मुद्रा भवति ।
९५ अन्वेषण-मुद्रा वा ।
९६ दुःख-मुद्रा वा ।
९७ लक्ष्यं मूलाधारे ।
९८ ज्योतिर्विद्योपनिषत्सु सेयं गीयते ।
९९ अन्तरिक्षादात्मनि प्रवहन्तीं शक्तिं वा ध्यायेत् ।
१०० अत्र शरीर-समर्पण मुद्रा ।
१०१ आदौ भावयेत् ।
१०२ कालेनानुभवति ।
१०३ अन्तरुष्मानुभवश्चात्मानु-भवान्नाति-रिच्यते ।
१०४ स्पर्शानुभव एषः ।
१०५ दर्शनानुभवोऽपरः ।

।। प्रचण्ड-चण्डिका-पटलः समाप्तः ।।

सप्तमः धूमावती-पटलः

१ धूमावतीं व्याख्यास्यामः ।
२ सप्तमी धूमावती दशसु महा-विद्यासु ।
३ यया नात्मनोऽन्यव्द्याजानात् परमः सा योग-निद्रा प्रलय-कालिकी धमावती ।
४ सर्व-कालानुबन्धिनीत्येके ।
५ मुक्तानां च नित्यानन्द-निद्रा ।
६ संसारिणां तु निद्रा-मूर्छा-विस्मृतिश्च ।
७ अविद्या च यया संसारिणो नात्मानं जानते ।
८ अविद्या मायातो विलक्षणा ।
९ ययैकं बहुधा पश्यन्ति सा माया ।
१० यया सन्तं न पश्यन्ति सा त्वविद्या ।
११ देव्या निद्रा-भ्रान्ति-रूपत्वं पौराणिके देवी-सूक्त उक्तम् ।
१२ इयमेव रात्रिर्देवी वेदेऽभिधीयते ।
१३ ह्वयामि रात्रिं जगतो निवेशनीमिति मन्त्रर्णोऽत्र भवति ।
१४ इयमेव देव्याद्यं तम उच्यते ।
१५ तम आसीत्तमसा गूह्ळमग्र इति मन्त्र-वर्णोऽत्र भवति ।
१६ तमो-रूपत्वादियं धूमावती ।
१७ आद्यत्वाज्ज्येष्ठा ।
१८ अधि-दैवतं वरुणानी ।
१९ विश्वोच्चाटन-कामो धूमावतीमुपासीत ।
२० द्विरनन्त-धूम-सहितेन शिरोऽन्तेन सम्बोधनेन ।
२१ शुद्धमुपासनं व्यतिरेकेणैव भवति ।
२२ नान्वयेन ।

२३ सर्व-सङ्कल्प-त्यागेनेत्युक्तं भवति ।
२४ तदेव महा-मौनम् ।
२५ संकल्पेन पूर्णे किमपि नान्तरं कुर्यात् ।
२६ अन्तर-कारिणो भयं श्रूयते ।
२७ इयं भूम-विद्येत्युपनिषदि गीयते ।
२८ तत्र हि ज्ञेयान्तर-निषेधः ।
२९ अत्रैव विद्याविद्ययोः समुच्चयः ।
३० केवला त्वविद्या निषिद्धा निद्रादिः ।
३१ तदन्धं-तमः ।
३२ केवला विद्या तु निषिद्धा विषय-ज्ञानात्मिका ।
३३ तद्-भूयोऽन्धं तमः ।
३४ समुच्चयेन विद्याविद्ये उपास्ये ।
३५ विद्या च पूर्णा स्वतः सिद्धा ।
३६ अविद्या च विषयाणाम् ।
३७ विषयाऽविद्यया मृत्युं तीर्त्वा ।
३८ पूर्ण-विद्ययाऽमृतमश्नुते ।
३९ विषयाऽविद्यैव पूर्ण-विद्या भासेत ।
४० एवमविद्याऽपि विषयाणां चेन्मुक्तिदा भवति ।

॥ धूमावती-पटलः समाप्तः ॥

अष्टमः बगलामुखी पटलः

१ बगलामुखीं व्याख्यास्यामः ।
२ अष्टमी सा दशसु महा-विद्यासु ।
३ स्तम्भन-शक्तिर्वगलामुखी ।
४ अध्यात्मं सा शङ्खिन्यां नाड्याम् ।
५ अधि-लोकं पितृ-याने पथि ।
६ दण्ड-नाथा काचन मध्यमाया अधि-दैवतम् ।
७ रिपु-स्तम्भन-कामो बगलामुखीमुपासीत् ।
८ अन्तः-शत्रु-स्तम्भन-कामो वा ।
९ खेन्द्राग्नि-शान्ति-चन्द्रैः संयुक्तैः ।
१० शुद्धमुपासनमिन्द्र-योनि-विद्यया ।
११ इन्द्र-योनिश्च जिह्वा-मूले लम्बमानं तैजसलिङ्गं ।
१२ तल्लक्ष्य-ध्यानं तद्-विद्या ।
१३ अन्तर्वायु-सञ्चार-निरोधेन वा ।
१४ तं हठ-योगमाहुः ।
१५ यो वायुं स्तम्भयेत् स सर्वं स्तम्भयेत् ।

॥ बगलामुखी-पटलः समाप्तः ॥

नवमः मातङ्गी पटलः

१ मातङ्गीं व्याख्यास्यामः ।
२ नवमी सा दशसु महा-विद्यासु ।
३ सामान्यतस्तारायास्तत्वेन मातङ्ग्यास्तत्वं व्याख्यातम् ।
४ अधि-दैवतैक्येऽपि किंचित् तत्त्व-भेदाद्विद्या-भेदः।
५ तत्राव्यक्तः शब्दस्तत्त्वम् ।
६ अत्र व्यक्तः ।
७ मन्त्रिणी मध्यमाया मातङ्ग्यधि-दैवतमित्येके।
८ भैरवी परा वाक् ।
९ तारा पश्यन्ती ।
१० मातङ्गी वैखरी ।
११ ताभी रुद्र-ब्रह्मणस्पत्यग्नी नामल्पो भेदो व्याख्यातः ।
१२ मध्यमा वाङ् मातङ्गीत्येके ।
१३ वैखरी-मध्यमयोरेकं तत्वमित्यविप्रतिषेधः ।
१४ ब्रह्मणस्पतिर्बृहस्पतिरित्यनर्थान्तरम् ।
१५ तारायाः शुद्धोपासनेन मातङ्ग्याः शुद्धोपासनं व्याख्यातम् ।
१६ मन्त्रेऽस्ति विशेषः ।
१७ वाणी-हृदयममरेश्वरः स-विद्यो युक्तौ तालव्याद्यनन्तर-स्पर्शौ युक्तौ मूर्धन्यादि स्पर्शोष्माणौ स-शेषः कच्छपेशः शुण्डान्त्यं स-विद्य इन्द्रः स-शेषः सूर्यो हरिरनु - नासिक - पूर्वः स-विद्यो गणपति-भृंगुरग्नि - जले संयुक्ते जलं बकोऽनुनासिक-पूर्वो ब्रह्मा स-विद्योऽग्निः शिर इति तन्मन्त्रः ।
१८ तारोपासन-फलेन तदुपासन-फलं व्याख्यातम् ।

॥ मातङ्गी-पटलः समाप्तः ॥

दशमः कमलात्मिका पटलः

१ कमलात्मिकां व्याख्यास्यामः ।
२ दशमी सा दशसु महा-विद्यासु ।
३ कमलैव कमलात्मिका ।
४ सुन्दर्यास्तत्वेन कमलात्मिकायास्तत्वं व्याख्यातम् ।
५ सुन्दर्याः शुद्धोपासनेन कमलात्मिकायाः शुद्धोपासनं व्याख्यातम् ।
६ तत्वैक्येऽप्यधि-दैवत-भेदाद् विद्या-भेदः ।

७ तत्र मध्यमस्य पत्नी देवता ।
८ अत्र तूत्तमस्य ।
९ अस्या अपि मन्त्रः श्रीविद्योच्यते ।
१० प्रथमोष्माग्नि-शान्ति-चन्द्रैः सहितैः स भवति ।
११ अनया कमलात्मिकामुपासीत मोक्ष-कामः ।
१२ वैभव-कामो वा ।
१३ इति दश-महा-विद्यास्तन्त्र-सार-भूताः ।
१४ तदेतत् पाद-शतोऽनेनार्ध-सहस्रेण सूत्राणां महा-विद्या-विवरणं भवति ।

।। कमलात्मिका-पटलः समाप्तः ।।

।। इति श्रीभगवन्महर्षि - रमणान्तेवासिनो वासिष्ठस्य नरसिंह-सूनोः गणपति-मुनेः कृतिः 'महा-विद्या-सूत्रम्' समाप्तम् ।।

[प्रस्तुत सूत्रों के रचयिता श्री मुनि उत्तरी कनारा के सिरसी-स्थान के निवासी थे और इनका परिचय 'चण्डी' में लगभग २५ वर्ष पूर्व प्रकाशित किया गया था । साथ ही प्रत्येक महा-विद्या के सूत्र भी सम्बन्धित विशेषाङ्कों में उद्धृत हो चुके हैं। यथा वर्ष २० में 'श्रीकमला पटल', वर्ष २१ में 'श्रीभुवनेश्वरी पटल', वर्ष २२ में 'श्रीबगला पटल' इत्यादि किन्तु 'चण्डी' की ये फाइलें अब अप्राप्य हैं ।

एक साथ दसों महा -विद्याओं के पटल प्रकाशित होने से इन सूत्रों का महत्व पाठक बन्धु समुचित रूप में हृदयङ्गम कर सकेंगे और आशा है कि कोई विद्वान् साधक इनकी व्याख्या हिन्दी में करने को तत्पर होंगे, जिससे सर्व-साधारण लोगों का भी ज्ञान-वर्द्धन हो सकेगा । ऐसी व्याख्या को 'चण्डी' में सादर प्रकाशित किया जायगा ।—सं०]

गुप्तावतार बाबाश्री

कृत

मुमुक्षु मार्ग

(रहस्योद्घाटन खण्ड)

'मन्त्र' का अर्थ, ॐ का अर्थ, 'राम' का अर्थ, भ० कृष्ण के मन्त्र का अर्थ, गायत्री का अर्थ, नवार्ण मन्त्र का अर्थ, मृत्युञ्जय मन्त्र और 'स्त्रीं' का अर्थ, श्री-यन्त्र की महिमा, 'त्रि-कूटों' का अर्थ, 'पादुका' की महिमा, भ० शिव के अनन्त भाव का वर्णन, कुण्डलिनी-रहस्य, योग-रहस्य, पूजा-रहस्य आदि महत्व-पूर्ण विषयों की जानकारी के लिये इस अनूठी कृति को पढ़िये । मूल्य : १५-००

हिन्दू-धर्म-कोश

लेखक—डा० राजबली पाण्डेय

अकारादि क्रम से हिन्दू-धर्म सम्बन्धी मुख्य-मुख्य ज्ञातव्य विषयों का प्रामाणिक विवरण इसमें दिया गया है । पृष्ठ-संख्या १०७०...४५-०० रु० ।

श्रीमहा-माया रात्रि-सूक्त

[मार्कण्डेय-पुराणोक्त 'रात्रि-सूक्त' चण्डी पाठकों में प्रचलित है। उसी भाव को स्पष्ट करनेवाला प्रस्तुत सूक्त 'कालिका-पुराण' से यहाँ उद्धृत है। इस सूक्त से सम्बद्ध मूल-मन्त्र चतुरक्षर है : ॐ ह्रीं ह्लीं श्रीं'। आशा है कि इसका पाठ-मनन कर सभी बन्धु-जन लाभान्वित होंगे।—सं०]

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीमहा - माया - सूक्तस्य (रात्रि - सूक्तस्य) श्रीब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीमहा-माया देवता। ह्रीं बीजं। ह्लीं शक्तिः। श्रीं कीलकम्। श्रीचण्डिका-प्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ध्यानम्—ॐ स्निग्धाञ्जन-द्युतिश्चारु-रूपोत्तुङ्गा चतुर्भुजा।
सिंहस्था खड्ग-नीलाब्ज - हस्ता मुक्त-कचोत्तरा॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

ॐ विद्याऽविद्यात्मिकां शुद्धां निरालम्बां निराकुलाम्।
स्तौमि स्तौमि देवीं जगद्धात्रीं स्थूलाणीयः स्वरूपिणीम्॥ १॥
यस्या उदेति च जगत् - प्रधानाख्यं जगत्-परम्।
यस्यास्तदंश - भूतं तां स्तौमि निद्रां सनातनीम्॥ २॥
त्वं चिति परमानन्द - परमात्म - स्वरूपिणी।
शक्तिस्त्वं सर्व - भूतानां त्वं सर्वेषां च पाविनी॥ ३॥
त्वं सावित्री जगद्धात्री त्वं रतिर्धृतिः।
त्वं हि ज्योतिः - स्वरूपेण संसारस्य प्रकाशिनी॥ ४॥
तथा तमः - स्वरूपेणाच्छादयन्ती सदा जगत्।
त्वमेव सृष्टि - रूपेण संसार - परिपूरिणी॥ ५॥
स्थिति-रूपेण च हरेर्जगतां च हितैषिणी।
तथैवान्त - स्वरूपेण जगतामन्त - कारिणी॥ ६॥
त्वं मेधा त्वं महा - माया त्वं स्वधा पितृ - मोदिनी।
त्वं स्वाहा त्वं नमस्कार - वषट्-कारौ तथा स्मृतिः॥ ७॥
त्वं पुष्टिस्त्वं धृतिर्मैत्री करुणा मुदिता तथा।
त्वमेव लज्जा त्वं शान्तिस्त्वं कान्तिर्जगदीश्वरी॥ ८॥
महा-माया त्वं च स्वाहा स्वधा च पितृ - देवता।
या सृष्टि-शक्तिरस्माकं स्थिति - शक्तिश्च या हरेः॥ ९॥

अनन्त - शक्तिस्तथैशानी सा त्वं शक्तिः सनातनी ॥ १० ॥
एका त्वं द्विविधा भूत्वा मोक्ष - संसार - कारिणी ।
विद्याऽविद्या - स्वरूपेण स्व - प्रकाशाप्रकाशतः ॥ ११ ॥
त्वं लक्ष्मीः सर्व - भूतानां त्वं छाया त्वं सरस्वती ।
त्रयी - मयी त्रि - मात्रा त्वं सर्व - भूत - स्वरूपिणी ॥ १२ ॥
उद् - गीतिः साम - वेदस्य या पितृ - गण - रञ्जनी ।
त्वं वेदिः सर्व - यज्ञानां साम - धेनी तथा हरिः ॥ १३ ॥
यदव्यक्तमनिर्देश्यं निष्कलं परमात्मनः ।
रूपं तथैव तन्मात्रं सकलं च जगन्मयम् ॥ १४ ॥
या मूर्तिर्वितता सर्व - धारिणी बिभ्रती क्षितिम् ।
सा त्वं विश्वम्भरे लोके शाक्त-भूति - प्रदा सदा ॥ १५ ॥
त्वं लक्ष्मीश्चेतना कान्तिस्त्वं पुष्टिस्त्वं सनातनी ।
त्वं काल - रात्रिस्त्वं मुक्तिः शान्तिः प्रज्ञा तथा स्मृतिः ॥ १४ ॥
संसार - सागरोत्तार - तरणिः सुख - मोक्षदे ।
प्रसीद सर्व - जगतां त्वं गतिस्त्वं मतिः सदा ॥ १७ ॥
त्वं नित्या त्वमनित्या च त्वं चराचर - मोहिनी ।
त्वं सन्धिनी सर्व - योग साङ्गोपाङ्ग - विभाविनी ॥ १८ ॥
चिन्ता कीर्तिर्यतीनां त्वं त्वं तदष्टाङ्ग - संयुता ।
त्वं खड्गिनी शूलिनी च चक्रिणी घोर-रूपिणी ॥ १९ ॥
त्वमीश्वरी जनानां त्वं सर्वानुग्रह - कारिणी ।
विश्वादिस्त्वमनादिस्त्वं विश्व - योनिरयोनिजा ।
अनन्ता सर्व - जगतस्त्वयेवैकान्त - कारिणी ॥ २० ॥
नितान्त - निर्मला त्वं हि तामसीति च गीयसे ।
त्वं हिंसा त्वमहिंसा च त्वं काली चतुरानना ॥ २१ ॥
त्वं परा सर्व - जननी दमनी दामिनी तथा ।
त्वय्यैव लीयते विश्वं भाति तत्तद् बिभर्ति च ॥ २२ ॥
त्वं सृष्टि - हीना त्वं सृष्टिस्त्वमकर्णापि स - श्रुतिः ।
तपस्विनी पाणि - पाद - हीना त्वं नितरां गुहा ॥ २३ ॥

त्वं द्यौस्त्वमापस्त्वं ज्योतिर्वायुस्त्वं च नभो मनः ।
अहङ्कारोऽपि जगतामष्टधा प्रकृतिः कृतिः ॥ २४ ॥
जगन्नाभिर्मेरु - रूप - धारिणी नालिका परा ।
पराऽपरात्मिका शुद्धा माया मोहाति - कारिणी ॥ २५ ॥
कारणं कार्य - भूतं च सत्यं शान्तं शिवा-शिवे ।
रूपाणि तव विश्वार्थे राग - वृक्ष - फलानि च ॥ २६ ॥
नितान्त - ह्रस्वा दीर्घा च नितान्ताणु - वृहत् - तनुः ।
सूक्ष्माऽप्यखिल - लोकस्य व्यापिनी त्वं जगन्मयी ॥ २७ ॥
मान - हीना विमानाति - विमानोन्मान - सम्भवा ।
यदष्टि - व्यष्टि - सम्भोग - रागादि - गलिताशया ॥
तत्ते महिम्नि तद्-रूपं तव भ्रान्त्यादिकं च यत् ॥ २८ ॥
इष्टानिष्ट - विपाकज्ञा यथेष्टाऽनिष्ट - कारणम् ।
सर्गादि-मध्यान्त-मयं निम्नं रूपं तथैव च ॥ २९ ॥
विचाराष्टाङ्ग - योगेन सम्पाद्यैवं मुहुर्म्मुहुः ।
यत् स्थिरी-क्रियते तत् त्वं रूपं सनातनम् ॥ ३० ॥
बाह्याबाह्ये सुखं दुःखं ज्ञानाज्ञाने लयालये ।
उप-तापस्तथा शान्तिर्भूतिस्त्वं जगतः पतेः ॥ ३१ ॥
यस्य प्रभावं नो वक्तुं शक्नोति भुवन-त्रये ।
तस्यैवं सम्मोह-करी सा त्वं किं स्तूयसे मया ॥ ३२ ॥
योग - निद्रा महा-निद्रा मोह - निद्रा जगन्मयी ।
विष्णोर्माया च प्रकृतिः कस्त्वां स्तुत्या विभावयेत् ॥ ३३ ॥
मम विष्णोः शङ्करस्य या वपुर्वह्न्यात्मिका ।
तस्याः प्रभावं को वक्तुं गुणान् वेत्तुं च कः क्षमः ॥ ३४ ॥
प्रकाश - करण - ज्योतिः स्वरूपान्तर - गोचरा ।
त्वमेव जङ्गम - स्थेय-रूपैका बाह्य - गोचरा ॥ ३५ ॥
प्रसीद सर्व-जगतां जननि ! स्त्री - स्वरूपिणि !
विश्व - रूपिणि ! विश्वेशे ! प्रसीद त्वं सनातनि ॥ ३६ ॥
ॐ अशेष-जगतां बीजे ज्ञेय-ज्ञान-स्वरूपिणि !
जगद्धिताय जगतां विष्णु-माये ! नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॐ तत्-सत् ॥

सन्त-वचनामृत

श्री वदनसिंह, रायभा, आगरा (उ० प्र०)

राजस्थान के उदयपुर-राज्यान्तर्गत मेवाड़ की पावन भूमि में तीन ओर से घिरी अरावली-पर्वत-शृङ्खला के मध्य सुरम्य झील के तट पर दिबेर ग्राम के निकट एक छोटा-सा 'बासा' नामक ग्राम है। यहाँ के निवासी अत्यन्त भोले, सुसभ्य और वृज के गोप-वत् हैं। जयपुर और अहमदाबाद जानेवाले राष्ट्रीय मार्ग से मात्र एक किलोमीटर के अन्तर पर 'बासा' गाँव स्थित है। इसी ग्राम में ब्रह्म-वेत्ता परम मनीषी दाता महाराज का आश्रम है, जो 'दाता-निवास' के नाम से विख्यात है। यहाँ साधु-सन्तों का आवागमन और सत्सङ्ग चलता ही रहता है। एक दिन उनके निम्न वचनामृत प्रसाद-रूप में प्राप्त हुए—

मानव योनि सर्व-श्रेष्ठ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस पुरुषार्थ-चतुष्टय की सिद्धि मानव जीवन में ही हो सकती है। परम पुरुषार्थ-रूप परमात्मा की प्राप्ति भी मनुष्य ही कर सकता है। सद्गुरु सद्शास्त्र और सत्सङ्ग ही वास्तविक मार्ग को बतला सकते हैं क्योंकि सद्-सिद्धान्तों का परिचय इन्हीं के द्वारा होता है आज के मानव में अजीब आदत पाई जाती है कि वह चाहता है कि अन्य लोग उसके चरण स्पर्श करें। यह आदत बड़ी खतरनाक है। यह आदत मनुष्य को अधः पतन की ओर ले जाती है। ऐसी इच्छाएं होनी नहीं चाहिए। आपके चाहने से आपकी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं। इच्छाएं तो परमात्मा की कृपा से ही पूरी होती हैं। अतः उसकी इच्छा पर ही सारी बातें निर्भर हैं। इच्छा केवल ईश्वर की ही होनी चाहिए क्योंकि उसकी इच्छा में ही सब है। यद्यपि ईश्वर इच्छा से परे है तथापि उसी की इच्छा से विश्व का संचालन हो रहा है। इस मानव शरीर को सरसता से ओत-प्रोत करने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता होती है। जैसे जल नल में आता है और जल के न रहने पर वह व्यर्थ हो जाता है क्योंकि नल तो एक पोल मात्र है। इसी प्रकार इस शरीर-रूपी नल में जब तक सद्गुरु-रूपी जल नहीं है, तब तक सरसता नहीं आती।

इधर मनुष्य कहता है कि वह सर्वव्यापी है और वह सबमें व्याप्त है, उधर व्यवहार में भिन्न बात सामने लाता है। मनुष्य की कथनी और करनी में कितना भारी अन्तर है! जैसा कहना चाहिए, वैसा ही करना चाहिए। कथनी को कार्य-रूप में लेने पर मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है। जैसे स्विच ऑन करते ही सब बल्ब प्रकाशमान हो जाते हैं, वैसे ही कथनी और करनी में अन्तर न लाने पर सब काम बन जाता है। भगवान् कृष्ण ने गोप-गोपियों को योग व ज्ञान नहीं बतलाया, उन्होंने तो उनको 'विकार' बतलाये थे। विकार जब गुण में बदल जायेंगे, तो सब काम बन जाएगा। जीव पर प्रभु की कृपा तो हरक्षण रहती है, उसके बिना तो जीवित रहना भी कठिन है।

मनुष्य को दुःख देनेवाली तीन ही वस्तुएँ हैं—तन, मन व धन। तन में मैल भरा है, जो अनेक रोगों का मूल है। यह मैल हर समय शरीर को कष्ट पहुंचाता है। मन में विकार भरे पड़े हैं, जो निरन्तर परेशानी और दुःख के कारण हैं। इसी प्रकार धन रोग-दोष व प्रपञ्च का मूल है। तीनों ही वस्तुएँ भयङ्कर कष्ट-दायक हैं, किन्तु फिर भी प्राणी इनके लिए सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। सभी इन तीनों को रखना चाहते हैं। तीनों ही तुम्हारे नहीं हैं, फिर भी तुम लोग इनके लिए मर रहे हो। जब तक इनके कष्ट का अनुभव नहीं कर पाओगे, तब तक तुम इन्हें अपना मानते रहोगे। अनुभव होते ही

दूसरों को सौंपने को तैयार हो जाओगे। तन, मन व धन आपके लिए विशेष नहीं हैं, अतः उनका लालच छोड़ परमात्मा को अपनाने की चाह करो।

मन को नियन्त्रित रखना नितान्त आवश्यक है। जब बाबर हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने आया तो लोगों ने युद्धक्षेत्र में उसके समक्ष हाथी को प्रस्तुत किया क्योंकि भारत में प्रायः युद्ध में शासक लोग हाथियों का प्रयोग करते थे। उसने हाथी पर आसीन होते ही लगाम माँगी। तब लोगों ने बताया कि हाथी के लगाम नहीं लगाई जाती। लगाम के स्थान पर अंकुश का प्रयोग किया जाता है, जो महावत के पास है। बाबर हाथी को पीठ से कूद पड़ा और बोला कि वह 'ऐसी सवारी का प्रयोग नहीं करता, जिसकी लगाम या अंकुश दूसरों के हाथ में है।' हम लोग मन को ढीला छोड़ देते हैं। उसको मनमानी उछल-कूद करने देते हैं। फिर विजय की कल्पना व्यर्थ है। मन की लगाम तो हमारे हाथ में होनी चाहिए, न कि हमारी लगाम मन के हाथ में। मन को जीत लिया, तो जग को जीत लिया। ईश्वर से मिलने के अनेक साधन हो सकते हैं किन्तु सबसे बड़ी बात मन को स्थिर करने की है चाहे योग-साधन हो, चाहे भक्ति-साधन, मन का स्थिर होना आवश्यक है।

वागिन्द्रिय का संयम मनुष्य की बहुत सी आपत्तियों का निवारक होता है। इसलिए मौन का अभ्यास अत्यन्त आवश्यक है। वाणी से न बोलने का नाम 'मौन' नहीं है। वास्तव में यह मन की साधना है।

मन बड़ा चञ्चल है। गुरु-चरणों में ही इसका समर्पण सम्भव है। गुरु ईश्वर का साकार स्वरूप ही होता है। गुरु को ही सर्वस्व मानकर मन को उनके चरणों में समर्पण करने से मार्ग प्रशस्त हो जाता है। जो गुरु के आदेशों का पालन करता हुआ, उसी को ईश्वर-रूप मानता हुआ साधना करता है, वह बड़ी शीघ्रता से गुत्थी को सुलझा सकता है। कुछ न जानकर एकमात्र सद्‌गुरु को जानना सभी मार्गों से सरल व सुखकर है। चित्त-वृत्ति का निरोध सद्‌गुरु की कृपा से क्षणमात्र में सम्भव है।

साधक के लिए सर्वाधिक महत्व की बात सत्य प्रिय और हित शब्दों का बोलना, ब्रह्मचर्य का पालन और चरित्र की रक्षा है। मृदु-भाषी होने के विषय में किसी कवि ने कहा है—

'कोयल काको देत है, कागा काको लेत ? केवल मीठे वचन ते, सबका मन हर लेत।'

चरित्र की रक्षा के विषय में भी कहा है—

'सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते। मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते॥'

अर्थात् सत्य से धर्म की रक्षा होती है। विद्या की योग से, सरलता से रूप की और चरित्र से कुल की रक्षा होती है।

गुणवान व्यक्ति के हृदय में कपट, छल और छिद्र नहीं होते। ऐसे ही व्यक्तियों का सङ्ग करना हितकर है। जिस व्यक्ति के हृदय में कपट, छल और छिद्रान्वेषण जैसे विकार रहते हैं, उसे आत्म-तत्व का प्रकाश नहीं होता। तुलसीदास जी ने इसीलिए कहा है—

'निर्मल मन जन मोहि सो पावा। सपनेहु छल, छिद्र कपट नहिं भावा।'

जैसे प्रकाश के होने से अन्धकार स्वतः ही भाग जाता है, उसी प्रकार भगवद्-चर्चा के सुनने से विकार और मल स्वतः ही दूर हो जाते हैं। उन्हें भगाना नहीं पड़ता। ईश्वर अपनी चर्चा स्वयं करता और स्वयं ही सुनता है।

(शेष पृष्ठ २३ के नीचे)

मानवोद्धार हेतु एक-मात्र मां दुर्गा

श्री पं० भुवनेश्वर झा, मिसरौलिया, मधुबनी (बिहार)

मानवोद्धार एवं मानव-कल्याण हेतु एक-मात्र माँ दुर्गा ही सर्वोपरि पूजनीया हैं। मानव सतत इनके मनन, चिन्तन एवं अभ्यास के द्वारा सब कुछ प्राप्त कर सकता है। माँ दुर्गा आदि-शक्ति-स्वरूपा जगत्-जननी महामाया भगवती हैं। कहा है कि—

सर्व-शक्ति-स्वरूपा सर्व-ज्ञानात्मिका परमा प्रकृतिः सा दुष्ट - दुर्ग - विनाशाद् दुर्गेति नाम्ना प्रसिद्धा जातेति पुराणादिषु शास्त्रेष्वभिहितम्।

अर्थात् सर्व-शक्ति-स्वरूपा, सभी ज्ञानों का भण्डार, सबसे श्रेष्ठ प्रकृति-स्वरूपा, दुष्ट के सङ्कट से त्राण दिलानेवाली 'दुर्गा' नाम से प्रसिद्ध हुईं, जो पुराण और शास्त्रों से भी सम्मत है। इतना ही नहीं—

बुद्ध्यधिष्ठात्त् देवी या सर्व-शक्ति-स्वरूपिणी। सर्व-ज्ञानात्मिका सर्वा सा दुर्गा दुर्ग-नाशिनी॥

अर्थात् जो बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं। सर्व-शक्ति-स्वरूपिणी, सभी ज्ञानों का भण्डार, सभी शक्तियाँ हैं और कठिन से भी कठिन कष्टों को नाश करनेवाली हैं।

दैत्य-नाशार्थ-वचनो दकारः परि-कीर्त्तितः। उकारो विघ्न-नाशस्य वाचको वेद-सम्मतः॥
रेफो रोगघ्न-वचनो गश्च पापघ्न-वाचकः। भय - शत्रुघ्न - वचनश्चाकारः परिकीर्तितः॥
स्मृत्युक्त-श्रवणाद्यस्य एते नाशयन्ति निश्चितम्। ततो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्त्तिता॥

अर्थात् 'दुर्गा' शब्द में 'द' दैत्य को नाश करनेवाला है। 'उ' विघ्न-नाशक वेद-सम्मत है। 'रेफ' रोग का, 'ग' पाप का और 'आ' भय तथा शत्रु का विनाश करनेवाला है।

एक बार 'दुर्गा' शब्द कहने से एवं श्रवण करने से मानव का कल्याण तथा उद्धार हो जाता है। इसलिये हरि और हर ने भी माँ दुर्गा का नाम - कीर्तन किया है। वेद, उपनिषद्, शास्त्र, पुराण सभी उनके वर्णन से भरे पड़े हैं। दुर्गा की महिमा अवर्णनीय है। श्री भगवती गीता १।५२ में कहा है–'हे देवि! आपके तत्व को हम देवता तथा असुर कुछ भी नहीं समझ सकते, तो मनुष्य का क्या कहना है ? हे परात्परे ! हे दयाम्बु-राशे ! हे त्रिगुण-मयी ! आपको प्रणाम है।'

पृष्ठ २२ का शेषांश

मनुष्य की विपत्तियों का मूल कारण उसकी त्रुटियाँ, हठ और उसकी अकर्मण्यता ही है। अतः इनके दूर करने का उपाय करना चाहिए। ईश्वर - भजन तथा सत्सङ्ग द्वारा मनुष्य को यथार्थ सहायता प्राप्त होती है। इस स्थिति में कर्त्तव्य मुख्य है क्योंकि अकर्मण्यता की अवस्था में ही मनुष्य दुर्विचारों का स्थान बनता है, उनसे ही दुःखों की उत्पत्ति होती है। अतः तुलसीदास की निम्न पंक्तियाँ सदैव स्मरण रखनी चाहिए—

नर-तन सम नहि कउनिउ देही। जीव चराचर याचत जेही॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग नसेनीं। ज्ञान विराग भगति शुभ देनीं॥

अर्थात् मनुष्य का शरीर अनुपम है। केवल इसी के द्वारा ज्ञान, वैराग्य, भक्ति की प्राप्ति सम्भव है, जिनसे सभी प्रकार का कल्याण मिलता है।

फिर भी जिसने जब भी माँ दुर्गा से अपने अभीष्ट की इच्छा की, उसे प्राप्त हुआ। श्री दुर्गा सप्तशती के प्रथम अध्याय से ज्ञात होता है कि ब्रह्मा जी स्वयं सङ्कट से घिरे हुये थे और मां दुर्गा की स्तुति करने पर ही सङ्कट से मुक्त हुये थे। अपने-अपने अभीष्ट की प्राप्ति हेतु मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम, योगेश्वर श्रीकृष्ण एवं श्रीअर्जुन आदि ने भी उनकी वन्दना - अर्चना की थी। स्वयं शक्ति-स्वरूपा होते हुये भी श्री जानकी जी ने महा-शक्ति-स्वरूपा गिरिजा का पूजन किया है। 'जानि कठिन शिव-चाप बिसूरति' के अनुसार अपने अभीष्ट के प्राप्त्यर्थ वे निम्न शब्दों में स्तुति करती हैं—

जय-जय गिरिवर राज किशोरी, जय महेश मुख चन्द चकोरी।
जय गज-वदन षडानन माता जगत जननि दामिनि दुति गाता।
नहि तव आदि मध्य अवसाना, अमित प्रभाउ वेद नहि जाना।
भव भव विभव पराभव कारिणि, विश्व विमोहनि स्व-वश-विहारिणि।

इस पूजा-स्तुति से प्रसन्न होकर महा-शक्ति-स्वरूपा श्री गौरी ने शक्ति-स्वरूपा श्री जानकी महरानी को मनोभिलषित वरदान देकर उपकृत किया। यथा—'मन जाहि राचेहुँ, मिलहिं सो वर सहज सुन्दर साँवरो, करुणा-निधान सुजान शीलु स्नेह जानत रावरो।'

'श्री भगवती गीता' ७।९७-९८ में पराम्बा की स्वयं उक्ति है—'हे देवता-गण! जब तक मेरी सर्व-व्यापक अखण्ड-सत्ता का अनुभव न हो, तब तक मेरे विशेष शक्ति-विकास के अनुसार विशेष-विशेष विभूतियों के दर्शन करके आप लोग भली भाँति मेरा स्मरण किया करें।' अतः मातृ-भाव को हृदयङ्गम करते हुए अपने शुद्ध आचरण, शुद्ध मन एवं निश्छल-भाव से माँ दुर्गा का स्मरण-पूजन, मनन - चिन्तन तथा ध्यान सदैव करते रहने से मानव मात्र का कल्याण एवं उद्धार निश्चित है, इसमें सन्देह नहीं।

भैरव-सर्वस्व

श्री पीताम्बरा-पीठ द्वारा प्रकाशित २८० पृष्ठों का यह अनूठा ग्रन्थ यथा नाम तथैव है। भगवान् बटुक भैरव, काल-भैरव आदि विविध भैरव-स्वरूपों के सम्बन्ध में प्रायः समस्त ज्ञातव्य विषय इसमें संगृहीत हैं। सबसे बढ़कर बात यह कि इसमें १ भगवान् बटुक भैरव (पीठ-प्रतिमा), २ बटुक भैरव (अष्ट-भुजी), ३ बटुक भैरव(सात्विक), ४ बटुक भैरव (राजस), ५ बटुक भैरव (तामस), ६ काल-भैरव, ७ महाकाल भैरव, ८ श्वेत भैरव—ये आठ रंगीन चित्र दिये गये हैं, जो अभूतपूर्व हैं। आवरण-पृष्ठ पर स्वर्णाकर्षण भैरव का आकर्षक चित्र है। इनके अतिरिक्त पूजन-सम्बन्धी विविध यन्त्रों के रेखा-चित्र भी दिये हैं। निस्सन्देह इस पुस्तक से श्री भैरवोपासना में साधकों को बड़ी सहायता मिलेगी। लेखक हैं पं० राधारमण दूर्वार, शास्त्री। मूल्य २१ रु० मात्र।

धर्मशास्त्र का इतिहास (पांच भागों में)

'भारत-रत्न' म० म० डा० पाण्डुरंग वामन काणे की यह ग्रन्थमाला बड़ी लोक-प्रिय रही है। यह इसका तीसरा संस्करण है। इसके पाँच भागों के मुख्य विषय इस प्रकार हैं—

1 प्राचीन एवं मध्यकालीन भारतीय धर्म तथा लोक-विधियाँ, २ प्रायश्चित्त, ३ कर्म-विपाक, ४ अन्त्यकर्म, ५ अशौच, ६ शुद्धि, ७ श्राद्ध, ८ तीर्थ-प्रकरण, ९ व्रत, १० उत्सव, 11 काल, 1२ पञ्चाङ्ग-३ शान्ति, १४ पुराण-अनुशीलन, १५ विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रकाश में धर्म-शास्त्र की रचना।

पाँच भाग का कुल मूल्य २०५-०० रु०। 'चण्डी' सदस्यों के लिये १८०-०० रु०

आहुति

परम पूज्य श्री कापालिक उद्‌बोधनानन्द जी

'उस्ताद, जरा शागिर्द को कण्ट्रोल करो', जम्हूरा बोला, 'हम सब पर बिना मतलब रोब लेता है। बड़ा बदमिजाज हो गया है। हम लोगों को ठर्रा देता है, पर खुद ह्विस्की-ब्राण्डो पीता है ! कम-से-कम उससे बोलना बिलकुल छोड़ दो।'

'हाँ उस्ताद', पिछलगुआ बोला, 'तुम दाढ़ी बढ़ा लो तो रोज शेव करने से बचोगे और पर्सनाल्टो जम जाएगी। बाल तो तुम्हारे बढ़े हैं ही। और फिर शागिर्द बच्चा दिखेगा, बात बन जाएगी।'

'नहीं उस्ताद, दाढ़ी बढ़ा कर तो स्थिति हास्यास्पद होगी', नौसिखुआ बोला, 'शागिर्द चिल्ला कर कहेगा—मन न रँगाए, रँगाए जोगी कपरा। दढ़िया बढ़ाए, बन गइले जोगी बकरा।'

'अरे, ये सब क्या खुसुर-फुसुर हो रहो है ! शागिर्द गरजा, 'शर्म नहीं आती, उस्ताद ! इन सबके साथ बैठ कर ठिठोली कर रहे हो। चलो, बोलना शुरू करो। हम लिखना शुरू करते हैं'—

'देवी-रहस्य' के मारीच-कल्प तन्त्र में सप्तशती के मंत्रों से द्रव्य-विशेष द्वारा हवन का अद्‌भुत विधान है, जो आजकल लुप्त-प्राय हो गया है। देखिए—

'गर्ज-गर्जे'ति मन्त्रेण सुरां दद्यात् प्रयत्नतः। अथवा माक्षिकं दद्यात् विशेषेण सुरेश्वरि ।।
'शूलेने'ति चतुर्मन्त्रैर्नाऽऽहुतिः कश्चिदाचरेत्। यदि मोहात् चरेद् वाऽपि तस्य नाशो न संशयः ।।

'महालक्ष्मी' त्यनेनैव चतुर्धा हवनं चरेत्। 'एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः' मन्त्रेणाऽनेन साधकः ।।
गन्ध-पुष्पाणि संदद्यात् पूजयेज्जगदम्बिकां। 'ततः कोपं' च मन्त्रेण मांसि दद्यात् महेश्वरि ।।

'मुखेन काली' मन्त्रान्ते रक्तं दद्यात् पशोरपि। अथवा कपि-काष्ठं च विकल्पेनैव होमयेत् ।।
'भक्षयन्त्याश्च' मनुना दाडिमी-कुसुमेन च। 'ततोऽहमि'ति मन्त्रेण शाकं दद्यात् तथोत्तमं ।।

'तदा तदेति' मन्त्रेण सिद्धार्थानपि होमयेत्। तदन्ते हवनं कुर्यात् प्रति-श्लोकेन पायसैः ।।
छागं तु प्रथमे दद्यात् द्वितीये माहिषं तथा। तृतीये कारणेनैव सर्व - कामार्थ - सिद्धये ।।

चतुर्थे तूर्य-मांसेन लक्ष्मी - कामार्थ - सिद्धये। पञ्चमे शश - मांसेन मोहनार्थं महेश्वरि ।।
षष्ठे च सप्तमे देवि ! खड्गेनैव हुनेत् तथा। अष्टमे तु महेशानि ! वन्य-वराहकेण च ।।

नवमे मार्जार - मांसेन दशमे गोधया तथा। रौद्रे कुक्कुट-मांसेन सर्व-कामार्थ-सिद्धये ।।
आदित्ये तु महेशानि ! जम्बुकेन तथैव च। त्रयोदशेऽश्व-मांसेन विधिना साधकोत्तमः ।।

इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित् त्वया। अभक्ताय न दातव्यं न देयं यस्य कस्यचित् ।।
अथवाऽन्य-प्रकारेण होमं कुर्याद् विचक्षणः। सिद्धिमाप्नोति साधकः सावधान-मना शृणु ।।

प्रथमे मधुना कुर्याद् द्वितीये गुग्गुलेन च। तृतीये च प्रकर्तव्यं माहिषेण घृतेन च ।।
शक्रादीनां स्तुतौ कुर्याद् गन्धाक्षत-समन्वितैः। कदली वैक्षु-दण्डैश्च बाण-षष्ठे च सप्तमे ।।

रक्त-बीज-वधे कुर्याद् रक्त-चन्दन - मिश्रितं। कुर्याद् होमं प्रयत्नेन नाना-द्रव्यैः समन्वितं ॥
नवमे दशमे देवि ! नारायणी-स्तुतौ तथा। गन्ध-पुष्पैः प्रकर्त्तव्यं पायसेन समन्वितं ॥
शत - पत्रैश्च कर्त्तव्यं गोरोचन - समन्वितं। द्वादशे त्रयोदशे च कर्त्तव्यं तु यथा-विधिः ॥
पञ्च-खाद्येन कर्त्तव्यं रहस्यादि यथा - क्रमम्। एतत् क्रमेण कर्त्तव्यं चैव मनोहरं ॥
आद्यन्ते तु प्रकर्त्तव्यं पायसं शर्करान्वितं। नील-व्रीहि-यवैश्चैव होतव्यं च घृताप्लुतं ॥
अन्यथा कुरुते यस्तु तत्सर्वं निष्फलं भवेत्। शास्त्रोक्तेन कर्त्तव्यो किन्न सिद्धयति भूतले ॥

'वाह-वाह, मेरे उस्ताद ! तुमने तो कमाल कर दिया। ऐसा टॉपिक चुनकर लिखवा डाला, जिस पर शायद ही किसी ने लेखनी उठाने का साहस किया हो। अरे, तुम्हारे जीनियस होने में दो राय तो हो ही नहीं सकतीं, पर अकल तुम्हारी जब घास चरने चली जाती है, तो सभी के लिए प्राब्लम हो जाता है।'

'चुप रहो, पिछलगुए', शागिर्द बोला, 'अभी अर्थ लिखा कर विषय स्पष्ट करो, उस्ताद, तो तुम्हें रम पिलाऊँगा।'

'मैं अर्थ अब नहीं लिखवाता', उस्ताद उवाच, 'सम्पादक-मण्डल से अनुरोध है कि कृपया कुछेक स्थलों को चिह्नित करके अर्थ लिख देंगे और व्याकरण-गत अशुद्धियों को दूर भी कर देंगे। विषय काफी स्पष्ट है। अतः पूरा अर्थ लिख कर सम्पादक-मण्डल एवं पाठकों का अमूल्य समय एवं 'चण्डी' के पृष्ठों का दुरुपयोग उचित नहीं है। हम इसे यहीं उन्हीं की इच्छा पर छोड़ते हैं।'

है उस्ताद ! अब तुम प्रैक्टिकल हो रहे हो, देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। अरे, सम्पादक-मण्डल को कान्फीडेन्स में लेकर रहोगे, तभी तो लेख छपेंगे। तुम्हारा भी प्रसार-प्रचार होगा। लिखोगे ही नहीं, तो बैठकर टाँपते रह जाओगे और गिद्धराज बाजी मार ले जाएंगे। तुमने तो 'पर-मान-वित्ताप-हारी गिद्धानन्दों' को उघारने का सङ्कल्प ही ले रक्खा है और साथ ही संक्षिप्त सर्व-सुलभ नाम-मात्र के खर्चवाले विधान पर लिखने का भी निश्चय किया है परन्तु यह जो हवन का विधान है—महिष, अश्व, गैंडे आदि सभी के मांस के हवन का विधान—वह कैसे सर्व-सुलभ हो सकता है ?'

'जब माई दया करती है, तो सभी हो सकता है। तथापि अशक्तों के लिए दूसरा विधान भी दिया है, जो १५ वें श्लोक से प्रारम्भ होता है। शान्ति, पौष्टिक कर्म के लिए घृत, पायस (खीर), तिल, जौ, चावल, त्रिमधु-युक्त पायस आदि का विधान है। इसी प्रकार धन-प्राप्ति के लिए कमल पुष्प या विल्व-दल, त्रि-मधु-युक्त विल्व-फल से, करवीर-हवन से वशीकरण, अपामार्ग-समिधा से ग्रह-पीड़ा-नाश, बेर की समिधा से शत्रु-नाश आदि विधान सुलभ हैं। उनकी पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं समझी।

'हाँ, एक बात ध्यान देने की है कि पुरोहित-गण वैदिक रीति से सप्तशती का हवन कराते हैं, जब कि पौराणिक या तान्त्रिक विधि अधिक उचित प्रतीत होती है। इसका उल्लेख बड़े ही सरल रूप से **'वाम-मार्ग'** पुस्तक में दी गई है। यदि पाठक - गण वहाँ देखेंगे, तो विषय स्पष्ट हो जाएगा। कौलिक विधान तो पञ्च-तत्व से आहुति दिलाता है। उसका समाधान निज गुरुदेव से कराना उचित है। इशारे के लिए इतना काफी है कि पात्र में तत्व लेकर करवीर पुष्प या अर्क-पुष्प डुबाकर आहुति देना भी एक सरल विधान है।

'हवन के लिए भी लोग दशांश पाठ करके १०८ नवार्ण आहुति दे डालते हैं। अत्यन्त अशक्तावस्था में ठीक हो चलता है, पर काम-चोरी नहीं होनी चाहिए। (शेष पृष्ठ २७ के नीचे)

दिव्य चक्षु का उन्मीलन

श्री मनोहर देवगुण, १३१ बी अर्जुननगर, नई दिल्ली—२६

हर एक जीवात्मा के सिर में तीन नेत्र होते हैं। एक नेत्र बन्द रहता है और दो खुले रहते हैं। यानी एक नेत्र गुप्त होता है और दो प्रकट होते हैं। उस प्रधान नेत्र को विद्वान् लोग 'दिव्य चक्षु' या 'शिव-नेत्र' कहते हैं। इसी को साधक लोग तीसरा नेत्र कहते हैं।

सर्व-साधारण का जो यह विश्वास है कि शिव-नेत्र केवल शङ्कर भगवान् के ही शरीर में है, यह भ्रम-पूर्ण है। योग-विद्या घोषित करती है कि तीसरा तिल सबमें विद्यमान है। जो भी चाहे भगवान् शङ्कर की तरह, अपने दिव्य चक्षु का उन्मीलन कर सकता है। फिर चाहे उससे आग निकाली जाय या पानी, क्योंकि वहाँ पञ्च-तत्वों का एक केन्द्र रहता है।

शिव-नेत्र में ब्रह्म का, दाहिने नेत्र में काल का और बाँयें नेत्र में शक्ति का निवास है। इन तीनों अंशों की संयुक्त अवस्था ही परेश्वर का रूप है। विराट् में जो आत्म-मण्डल की त्रिपुटी है, ये तीनों नेत्र उसकी छाया हैं। शिव-नेत्र का सम्बन्ध ब्रह्म-मण्डल से, दाहने नेत्र का सूर्य-मण्डल से और बाँयें नेत्र का सम्बन्ध चन्द्र-मण्डल से है। शिव-नेत्र से विचार उत्पन्न होता है, दाहने से इच्छा और बाँयें से क्रिया उत्पन्न होती है।

दिव्य चक्षु का प्रमाण

हर शरीर में दिव्य चक्षु है, इसका एक प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि जब आप सो जाते हैं, तब दोनों बाहरी नेत्र तो बन्द हो जाते हैं। फिर जब आप सपना देखते हैं, वह उसी तीसरे नेत्र के प्रकाश से,

---

[पृष्ठ २६ का शेषांश]

'कुण्ड-निर्माण में बहुत दोष हैं। अतः कहा है कि—**कुण्डे बहव : दोषाः, स्थण्डिले बहवः गुणाः। तस्माद् कुण्डं परित्यज्य स्थण्डिले हुनेत् सुधीः ।।**

'अधिकांश हवन स्थण्डिल में किए जा सकते हैं परन्तु शत-चण्डी, सहस्र-चण्डी, लक्ष वा कोटि-पाठ में तो कुण्ड-निर्माण आवश्यक हो जाता है।

'अजी, मन तो बनाइये। एक बार मन कड़ा करके '**नित्यानुष्ठान तत्परः**'—नित्य ही अनुष्ठान करने को तत्पर हो जाइये, फिर तो खप्पर वाली मैया मुस्कुरा कर और बैल वाला बाबा ठहाका लगा कर सब सुलभ कर देंगे—बड़ी कृपालु, बड़े रमालु हैं। थोड़ी ठिठोली जरूर करते हैं, पर आप क्या-क्या खुद ही कर गए, जब सोचिएगा, तो आश्चर्य कीजिएगा। यही सभी की अनुभूति होती है और आपकी भी होगी। बस, जरा 'परान्न', 'प्रतिग्रह' और 'पर-स्त्री' से बच कर और गिद्धराजों को पहचानते हुए—गृद्धानन्दों के नाटकीय आचरणों को समझते हुए चलते चलना है। जिनके विषय में स्वयं बैलवाले बाबा महाकाल-स्वरूप कहते हैं (कर्पूरस्तोत्र में)—

वदामस्ते किं वा जननि! वयमुच्चैर्जड़-धियो न धाता नापीशो हरिरपि न ते वेत्ति परमं।

और कितना बड़ा साहस कि उसी खप्पर वाली माई के विषय में उसकी प्रसन्नता और कृपा पाने का विधान हम लिखने में प्रवृत्त हों। फिर भी—

तथापि त्वद्-भक्तिर्मुखरयति चास्माकमसिते! तदेतत् क्षन्तव्यो न खलु पशु-रोषः समुचितः।

जो भीतर है, देखते हैं। दिव्य चक्षु का प्रकाश बाहरी दुनिया पर तब तक नहीं आता, जब तक विधि-
विधान से उसका उन्मीलन न किया जाय।

दिव्य चक्षु का प्रकाश अन्दर की दुनिया (सूक्ष्म जगत्, कारण जगत् और आत्म-जगत्) में भर-
पूर रहता है। इसी कारण स्वप्न में जो कुछ होता है, वही दिखाई पड़ता है। सपने को मन नहीं देखता
क्योंकि मन में देखने की शक्ति नहीं होती। अगर मन ही देखता होता, तो अपने मन का आकार क्यों
दिखाई देता ?

सपने में अपना मन आकार धारण कर लेता है और वह आकार स्वप्न देखनेवाले का ही रूप
होता है। अगर मन ही देखता होता, तो आप अपने मन का धारण किया हुआ आकार (आपका अपना
रूप) कैसे देख सकते थे ?

सपने में आप सहित सभी कुछ दिखाई देता है। शिव-नेत्र का प्रकाश ही आपके मन का
आकार आपको दिखलाता है, अतः सपनों का दिखाई देना मन की शक्ति के अन्तर्गत नहीं है। यह 'दिव्य-
चक्षु' की शक्ति के ही अन्तर्गत है। सिनेमा में परदे पर जो फिल्म दिखाई देती है, वह फिल्म - रूपी मन
की लीला जरूर है, मगर उसको दिखाने (प्रकाशित करने) का श्रेय उस प्रकाश को ही है, जो ऊपर से
आकर उस परदे पर पड़ रहा है। प्रकाश - रूपी चक्षु ही परदे को दीप्तिमान करता है। तभी सारा
खेल-तमाशा दिखाई देता है।

दिव्य चक्षु के उन्मूलन का विधान

पद्मासन से बैठें, आँखें बन्द कर लें, जिह्वा को उल्टा कर तालु से लगा दें, अपने ध्यान को
दोनों भवों के मध्य से एक अंगुल ऊँचे, नाक की जड़ से दो अंगुल ऊपर जमा लें। यह ध्यान बाहरी
मस्तक पर नहीं, अन्दर जमाना चाहिये। ध्यान करते समय अपने गुरु द्वारा दिये मन्त्र का जप करते
रहें, जप मन से करें, न कि जिह्वा से। आधे घण्टे से प्रारम्भ कर एक मास में दो घण्टे तक ध्यान की
अवधि बढ़ा ले जाएँ। जप का स्थान घर में ही एकान्त में बना लें।

समय के नियमित रहकर १०० दिन तक करने से गुरु-कृपा हो जाती है। मन को इधर-उधर
न जाने दें। कोई सङ्कल्प उठे तो उसे मिथ्या समझ कर छोड़ दें। पुनः मन को ध्यान में लगायें, तो दिव्य
चक्षु खुल जाता है। पहले मन्द प्रकाश का अनुभव होता है, फिर बढ़ते-बढ़ते वही ज्योतिर्मय दिव्य चक्षु
का रूप ले लेता है।

चक्षु-उन्मीलन का फल

जिन साधकों का दिव्य चक्षु खुल जाता है, उन्हें अपने ज्ञान और शक्ति से काम लेने का अधि-
कार प्राप्त हो जाता है। उनको होनेवाली या हो रही घटनाएँ सब दिखाई देती हैं। उनका मन धीरे-
धीरे एकाग्र हो जाता है। अपना तथा दूसरों का भविष्य मालूम हो जाता है। अपना जीवन बढ़ाया
जा सकता है। गुरु और इष्ट के दर्शन प्राप्त होते हैं और स्वास्थ्य सब प्रकार से ठीक रहता है।

बीज-मन्त्र और उनकी सार्थकता

'कुलभूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

कोई भी क्रिया क्यों न हो, उसके साथ गति का होना अनिवार्य है। अतएव जहाँ क्रिया होगी, वहाँ स्पन्द या गति अवश्य होगी और इस क्रम में द्रष्टा को जो सुनाई पड़ता है, वह 'शब्द' कहलाता है। यह शब्द सुनाई पड़ भी सकता है और नहीं भी सुनाई दे सकता। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि एक व्यक्ति की श्रवण-शक्ति तीव्र होने के कारण वह उस 'शब्द' को भी सुन लेता है, जो दूसरे व्यक्ति के कानों से बच जाता है। इस दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि 'शब्द' हुआ ही नहीं। 'शब्द' तो अवश्य होता है परन्तु श्रवण-शक्ति दुर्बल होने के कारण उक्त दूसरा व्यक्ति उसे सुन नहीं पाता। इसी प्रकार एक 'शब्द' ऐसा भी है कि उसे अकेले कानों द्वारा सुना ही नहीं जा सकता। हाँ, किसी भौतिक यन्त्र की सहायता से उसे अवश्य सुन सकते हैं। तथापि 'शब्द' का एक ऐसा भी स्वरूप है, जिसे किसी यन्त्र से भी नहीं सुना जा सकता। उसे यौगिक मन ही स्वानुभूति के रूप में ग्रहण कर सकता है।

आदि काल में जब प्रकृति साम्यावस्था में थी, तब अवश्य किसी प्रकार का 'शब्द' अस्तित्व में नहीं था क्योंकि उस समय भौतिक संसार की कोई गति नहीं थी। अतः पहली ध्वनि तब हुई, जब वैषम्यावस्था होने के कारण सारी प्रकृति में एक प्रकार का सामान्य स्पन्दन व्याप्त हो गया। यही थी 'ॐ' शब्द की प्रणव - ध्वनि।

यहाँ यह स्मरणीय है कि उक्त ध्वनि का ठीक-ठीक रूप 'ॐ' शब्द के वर्णों के उच्चारण से उपस्थित हो जाता है, ऐसा न समझना चाहिये। 'ॐ' तो केवल उस सूक्ष्म शब्द के स्थूल उच्चारण को कानों तक लगभग व्यक्त करता है। यही सूक्ष्म शब्द योगानुभव में प्रथम गति के रूप में अनुभूत होता है क्योंकि प्रति क्षण सृष्टचात्मक गति वर्तमान रहती है। इस सामान्य 'स्पन्द' और 'शब्द' से विशेष 'स्पन्द' और 'शब्द' उत्पन्न होते हैं। इसे एक उदाहरण से सरलतापूर्वक समझा जा सकता है, जो इस प्रकार है—यदि जल से भरे हुए एक पात्र को हिलाया जाय, तो पात्रस्थ सारे जल में पहले एक सामान्य गति उत्पन्न होगी। तब जल के प्रत्येक भाग में विशेष गतियाँ उत्पन्न होंगी, कभी इधर तो कभी उधर। इसी प्रकार प्रकृति के गुणों की गति से पहले साम्यावस्था में एक सामान्य हलचल उत्पन्न होती है, उसके बाद गुणों की एक दूसरे पर क्रिया और प्रति-क्रिया होती है जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण में जल की दूसरी दशा में दिखाया है।

विभिन्न गत्यात्मक दशाओं के प्रस्तुत होने पर विभिन्न 'शब्द' उत्पन्न होते हैं। पहला और समस्त में सम भाव से व्यापक शब्द 'ॐ' है, जो महा-बीज है क्योंकि यह अन्य सबका और सभी संयुक्त शब्दों का मूल है। यहाँ यह स्पष्ट है कि 'ॐ' सामान्य शब्द है और अन्य बीज-मन्त्र विशेष शब्द हैं, जो वर्ण-माला के अक्षर कहलाते हैं। ये अक्षर सामान्य शब्द से विकास पाते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि इन विशिष्ट शब्दों में उक्त सामान्य शब्द अन्तर्निहित रहता है। इस प्रकार मुख से बोले जानेवाले ॐकार या प्रणव और बीज-मन्त्र अनुच्चरित आदि-ध्वनि के उच्चरित प्रतिनिधि हैं। ये अपनी अन्तिम अवस्था में इस उच्चरित रूप को प्राप्त करते हैं।

शब्द की चार अवस्थाएँ होती हैं—१ परा—गति की प्रेरणा, २ पश्यन्ती—सामान्य गति, ३ मध्यमा—सूक्ष्म प्रकार की विशेष गति, जो सूक्ष्म श्रवण - शक्ति द्वारा ही अनुभव में आती है। और ४

वैखरी—विशेष गति, जो वाणी के रूप में पूर्ण उच्चरित शब्द है, जिसे स्थूल कानों से सुना जा सकता है। इन अवस्थाओं में से अन्तिम अवस्था वैखरी या स्पष्टतर स्पन्द में ही शब्द का उच्चरित रूप अस्तित्व में आता है।

इस प्रकार प्रणव - मन्त्र ब्रह्म का शब्द-रूप है और बीज-मन्त्र उसके विभिन्न सगुण देवतात्मक स्वरूप हैं। यह सच है कि 'ॐ' को 'अ, उ और म', इन तीन वर्णों से बना माना जाता है परन्तु इसका आशय यह नहीं है कि आदि-ध्वनि इन वर्णों या इनके सम्मिश्रण जैसी थी क्योंकि ये वर्ण तो आदि ध्वनि से विकसित होते हैं। इनके भी पहले आदि-ध्वनि होती है। मतलब यह है कि 'ॐ' का जो स्थूल शब्द स्थूल कानों से सुना जाता है, वह उक्त वर्णों की सन्धि या मिश्रण का फल है। अतः 'ॐ' शब्द नाभि से विकास पाकर लगातार और गम्भीर उत्थानपूर्वक अग्रसर होता हुआ नासिका के ऊर्ध्व भाग में, जहाँ चन्द्र-बिन्दु ध्वनित होता है, समाप्त होता है।

वर्ण-संख्या के आधार पर मन्त्रों के विभिन्न नाम हैं। बीज-मन्त्र वह मन्त्र है, जिसमें केवल एक वर्ण हो। यथा 'कँ', जो 'क' और चन्द्र-बिन्दु (ँ) से बना है। यहाँ यह स्मरणीय है कि सभी मन्त्रों की परि-समाप्ति चन्द्र-बिन्दु से होती है। एक प्रकार से यहाँ एक दूसरा वर्ण भी विद्यमान है। इसका कारण यह है कि स्वर का उच्चारण इस प्रकार का हो ही नहीं सकता कि वह पूर्ण - रूप से समाप्त हो जाय। इसके लिए व्यञ्जन की सहायता ली जाती है और यह ठीक भी है क्योंकि वास्तव में, जैसा कि पाणिनि का मत है, व्यञ्जन का कार्य ही है स्वर की ध्वनि को रोकना। व्यञ्जन का उच्चारण स्वर के बिना नहीं हो सकता और इसी से स्वर को व्यञ्जन की 'शक्ति' माना जाता है।

उक्त मन्त्र 'कँ' की परि-समाप्ति 'म्' से होती है, जो चन्द्र-बिन्दु के रूप में रहता है। यही नाद और बिन्दु कहा जाता है। इस प्रकार यह बीज-समापक 'म्' नासिका के अन्तराल में ऊर्ध्व भाग में ही उच्चरित होता है और होठों तक कभी नहीं पहुँच पाता। अन्य सभी वर्णों में पञ्च-भूतों (आकाश, वायु, अग्नि, अप् और पृथिवी) में से एक न एक भूत की प्रधानता रहती है। यही कारण है कि गुरु द्वारा शिष्य के लिए मन्त्र चुनते समय इस बात की परीक्षा की जाती है कि किस विशेष भूत का आधिक्य या न्यूनता है। जिस वर्ण में किसी भूत का आधिक्य होता है, उसे प्रश्वासपूर्वक कहा जाता है और जिसमें न्यूनता होती है, उसे निःश्वासपूर्वक। बीज की परि-समाप्ति के लिये 'म्' चुना जाता है क्योंकि इसके सम्बन्ध में यह मान्यता है कि इसमें पाँचों भूत साम्यावस्था में विद्यमान हैं।

यद्यपि बीज एक-वर्णात्मक होता है तथापि अन्य छोटे मन्त्रों यथा 'ह्रीं, श्रीं, क्रीं, हुं, ऐं, फट्' को भी बीज कहा जाता है। इन मन्त्रों में दो या दो से अधिक वर्ण विद्यमान हैं। जैसे प्रथम मन्त्र 'ह्रीं' में 'ह् र् ई' और चन्द्र-बिन्दु हैं। इन बीज-मन्त्रों का अर्थ यों तो कुछ भी प्रतीत नहीं होता, निरर्थक से मालूम होते हैं और भाषा के सामान्य व्यवहार के अनुसार ये वैसा कोई अर्थ रखते भी नहीं हैं, जिससे मन्त्र-शास्त्र से अनभिज्ञ लोग इनकी हँसी तक उड़ाते देखे जाते हैं परन्तु दीक्षा - प्राप्त व्यक्ति जानता है कि इनका अर्थ उन देवताओं का स्वरूप है, जिनके कि वे मन्त्र हैं। साथ ही, वह यह भी अनुभव करता है कि ये बीज-मन्त्र उस सृष्टयात्मक ध्वनि-रूपा सूक्ष्म शक्ति के रूप हैं, जो समस्त वर्ण-ध्वनियों को उत्पन्न करती है और हम जो कुछ कहते हैं या सुनते हैं, उस सबमें वह विद्यमान रहती है।

प्रत्येक देवता का बीज होता है। इस प्रकार 'क्रीं, ह्रीं' और 'रँ' के देवता क्रमशः ये हैं—काली, माया और अग्नि। किसी भी देवता या देवी की पूजा में जो मन्त्र मुख्यतया प्रयुक्त होता है, वह उसका 'मूल-मन्त्र' कहा जाता है। इस सबसे प्रकट है कि प्रत्येक वर्ण, अक्षर और मन्त्र ब्रह्म का ही रूप

है और यही बात मूर्ति तथा यन्त्र की रेखाओं और संसार के समस्त पदार्थों के सम्बन्ध में लागू होती है। यही कारण है कि शास्त्र कहता है कि—

'जो मूर्ति को केवल पत्थर और मन्त्र को केवल एक वर्ण समझता है, वह नरक को जाता है।'

सभी वर्ण शब्द-शक्तियों के रूप में शक्ति के स्वरूप हैं। अतएव देवता का मन्त्र ही देवता है। इसकी ध्वनियों से उपासक की अस्थिर प्रवृत्तियाँ केवल नियमित ही नहीं होतीं और इस प्रकार उसे आदर्श व्यक्तित्व मात्र ही नहीं प्राप्त होता किन्तु उसकी साधना-शक्ति के फल-स्वरूप उसमें से देवता का स्वरूप भी आविर्भूत होता है। वृहद्-गन्धर्व तन्त्र (अध्याय ५) में लिखा है—

श्रृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि बीजानां देव-रूपताम्। मन्त्रोच्चारण-मात्रेण देव-रूपं प्रजायते ।।

इस प्रकार बीज का अपना एक अर्थ होता है। वह उस अर्थ या देवता को अभिव्यक्त करता है, जिसका कि वह स्वयं स्वरूप है। वह देवता क्या है, यह साधक को सिखाया जाता है। ठीक उसी प्रकार, जैसे एक बच्चा सीखता है कि गुलाब का अर्थ है एक विशेष प्रकार का फूल और खीर है एक विशेष प्रकार का भोजन, जिसे वह खाता है।

पञ्च-भूतों के बीज हैं—'हँ, यँ, रँ, लँ' और 'वँ'। जहाँ एक से अधिक वर्ण होते हैं, वहाँ प्रत्येक का अपना-अपना अर्थ होता है। उदाहरण के लिए बारह बीज-मन्त्रों के अर्थ 'वरदा तन्त्र' के छठे अध्याय में दिये हैं, जिनका संग्रह 'प्राणतोषिणी' में हुआ है। यथा—

'हौं'— शिव-वाची हकारस्तु औकारः स्यात् सदा-शिवः। शून्यं दुःख-हरार्थं तु तस्मात्तेन शिवं यजेत्।

अर्थात् 'ह' का अर्थ है शिव। 'औ' है सदाशिव। शून्य (ँ) वह है, जो दुःख दूर करता है। अतएव उससे शिव की पूजा करनी चाहिये।

'दुँ'— द दुर्गा-वाचकं देवि ! उकारश्चापि रक्षणे। विश्व-माता नाद-रूपा कुर्वर्थ-विन्दु-रूपकः ।।

अर्थात् हे देवि ! 'द' का अर्थ है दुर्गा। 'उ' का भी अर्थ है रक्षा करना। नाद विश्व की माता है। विन्दु का अर्थ है प्रार्थना करना।

'क्रीं'— क काली ब्रह्म र प्रोक्तं महा-मायार्थकश्च ई। विश्व-मातार्थको नादो विन्दुर्दुःख-हरार्थकः ।।
तेनैव कालिका-देवीं पूजयेद् दुःख-शान्तये ।।

अर्थात् 'क' है काली। 'र' को ब्रह्म कहा जाता है। 'ई' का अर्थ है महा-माया। नाद का अर्थ है विश्व-माता। विन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। उससे दुःख दूर करने के लिए देवी कालिका की पूजा करनी चाहिये।

'ह्रीं'— हकारः शिव-वाची स्याद् रेफः प्रकृतिरुच्यते। महा-मायार्थः ई शब्दो नादो विश्व-प्रसूः स्मृतः ।।
दुःख-हरार्थको विन्दुर्भुवनां तेन पूजयेत् ।।

अर्थात् 'ह' का अर्थ शिव है। 'र' को प्रकृति कहा जाता है। 'ई' का अर्थ है महा-माया। नाद को विश्व-माता कहा जाता है। विन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। उससे भुवनेश्वरी की पूजा की जानी चाहिए।

'श्रीं'— महा-लक्ष्म्यर्थकः शः स्याद् धनार्थ रेफ उच्यते। ई तुष्ट्यर्थो परो नादो विन्दुर्दुःखहरार्थकः ।।
लक्ष्मी-देव्या बीजमेतत् तेन देवीं प्रपूजयेत् ।।

अर्थात् 'श' का अर्थ है महा-लक्ष्मी। 'र' का अर्थ सम्पत्ति कहा जाता है। 'ई' का अर्थ है सन्तुष्टि। नाद है अपर (अपर-ब्रह्म या ईश्वर)। विन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। यह देवी लक्ष्मी का वोज है। उससे देवो की पूजा करनी चाहिये।

'ऐं'— सरस्वत्यर्थः ऐ शब्दो विन्दुर्दुःख-हरार्थकः। सरस्वत्या बीजमेतत् तेन वाणीं प्रपूजयेत् ॥

अर्थात् 'ऐ' का अर्थ है सरस्वती। विन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। यह सरस्वती का वीज है। उससे वाणी या सरस्वती की पूजा करनी चाहिए।

'क्लीं'— क कामदेव उद्दिष्टोऽप्यथवा कृष्ण उच्यते। ल इन्द्र ई तुष्टि-वाची सुख-दुःख-प्रदश्च अँ ॥
काम-बीजार्थ उक्तस्ते तव स्नेहान्महेश्वरि ॥

अर्थात् 'क' काम-देव का परिचायक है अथवा कृष्ण का। 'ल' का अर्थ है इन्द्र। 'ई' का अर्थ है सन्तुष्टि। 'अँ' वह है, जो सुख और दुःख देता है। इस प्रकार हे महेश्वरि, तुम्हारे स्नेह से मैंने तुम्हें काम-वीज का अर्थ बता दिया।

'हुं'— ह शिवः कथितो देवि ! ऊ भैरवः इहोच्यते। परार्थो नाद-शब्दस्तु विन्दुर्दुःख-हरार्थकः ॥
वर्म-बीज-त्रयो ह्यत्र कथितः तव यत्नतः ॥

अर्थात् हे देवि ! 'ह' शिव कहा जाता है। 'ऊ' भैरव कहा जाता है। नाद का अर्थ है पर। विन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। तुम्हारे लिये वर्म-वीज के बनानेवाले इन तीनों को प्रयत्न से यहाँ कहा गया है।

'गं'— गणेशार्थे ग उक्तस्ते विन्दुर्दुःख-हरार्थकः। गं बीजार्थं तु कथितं तव स्नेहान्महेश्वरि ॥

अर्थात् मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि 'ग' का अर्थ गणेश है। विन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। इस प्रकार हे महेश्वरि ! तुम्हारे स्नेह से मैंने तुम्हें 'गं' बीज का अर्थ बता दिया।

'ग्लौं'— ग गणेशो व्यापकार्थो लकारस्तेज औ मतः। दुःख-हरार्थको विन्दुर्गणेशं तेन पूजयेत् ॥

अर्थात् 'ग' गणेश है। 'ल' का अर्थ है व्यापक। 'अ' का अर्थ है तेज। बिन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। उससे गणेश की पूजा करनी चाहिए।

'क्ष्रौं'— क्ष नृसिंहो ब्रह्म रश्च ऊर्ध्व-दन्तार्थकश्च औ। दुःख-हरार्थको बि-दुर्नृसिंहं तेन पूजयेत् ॥
अर्थात् 'क्ष' है नृसिंह और 'र' है ब्रह्म। 'औ' का अर्थ है ऊपर को उठा हुआ दाँत। बिन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। उससे नृसिंह की पूजा करनी चाहिये।

'स्त्रीं'— दुर्गोत्तारण-वाच्यः स तारकार्थस्तकारः। मुक्त्यर्थो रेफ उक्तोऽत्र महा-मायार्थकश्च ई ॥
विश्व-मातार्थको नादो बिन्दुर्दुःख-हरार्थकः। बधु-बीजार्थ उक्तोऽत्र तव स्नेहान्महेश्वरि ॥

अर्थात् 'स' का अर्थ है कठिनाइयों से छुटकारा। 'त' का अर्थ है त्राण-कर्ता। 'र' का अर्थ यहाँ मोक्ष है। 'ई' का अर्थ है महा-माया। नाद का अर्थ है विश्व-माता। बिन्दु का अर्थ है दुःख को दूर करनेवाला। इस प्रकार हे महेश्वरि ! तुम्हारे स्नेह से मैंने तुम्हें बधु-बीज का अर्थ बता दिया।

उपर्युक्त बीजार्थों से स्पष्ट हो जाता है कि यह कथन कि बीज निरर्थक हैं सर्वथा निराधार है। उक्त उदाहरणों के समान अन्य बीजों का अर्थ भी हृदयङ्गम किया जा सकता है।

भगवान् बटुक - भैरव स्तवन

['चण्डी' वर्ष ३ : सम्वत् २००१ वि०-सन् १९४४ ई० : सं० ९]

जय मूलाग्नि वटुक शिवा-सुत, जय अनन्त बल-धारा ।
जयति गुणाकर, वाल-रूप-धृत, जय महेश दृग-तारा—जय मूलाग्नि-बटुक शिवा-सुत० ।। १
जयति त्रिगुण-सर, त्रिगुण-धर, मूरति त्रय जग सारा ।
मटि किङ्किणि-धर, कर त्रिशूल धर, डमरु गदा खर धारा—जय मूलाग्नि-बटुक शिवा-सुत० ।। २
मुण्ड-माल-धर, कङ्कण विष-धर, नाग-हार शिर छारा ।
जटा-जूट-धर, भस्म अङ्ग कर, वराभये संसारा—जय मूलाग्नि - बटुक शिवा - सुत० ।। ३
'मोती' दिव्य प्रजवाल, रूप-धर, तेज-रूप नहिं पारा ।
दर्शन अघ-हर, दोष-तिमिर-हर, होत भक्त भव पारा—जय मूलाग्नि - बटुक शिवा-सुत० ।। ४

भगवान् गणेश-स्तवन

['चण्डी' वर्ष ३ : सम्वत् २००१ वि०-सन् १९४४ ई० : सं० १०]

जय गण-पति गिरिजा-नन्दना ।
एक - दन्त गज - दन्त विनायक, शङ्कर-सुत-पद वन्दना—जय गण-पति गिरिजा-नन्दना ।। १
जो सेवत पादारविन्द तव, सिद्धि-सदन शिव-नन्दना—जय गण-पति गिरिजा-नन्दना ।। २
पावत रिद्धि-महा-निधि सुख जग, छूटत भव-भय-बन्धना—जय गण-पति गिरिजा-नन्दना ।। ३
शुण्डा दण्ड कर्ण गज लम्बोदर, भव-भार-विभञ्जना—जय गण - पति गिरिजा-नन्दना ।। ४
रक्त गौर वपु दया धाम छवि, शत्रु-निकर-भव-गञ्जना—जय गण-पति गिरिजा-नन्दना ।। ५
दिव्य मुक्त नूपुर ध्वनि फणि मणि, भूषित माल गजानना—जय गण-पति गिरिजा-नन्दना ।। ६
चन्द्र-भाल शशि बाल लाल मुख, काल-जाल-भय-भञ्जना—जय-गण-पति गिरिजा-नन्दना ।। ७
मद झर गण्ड भ्रमर-गण गुञ्जत, कलप तिमिर तप चन्दना—जय गण-पति गिरिजा-नन्दना ।। ८
'मोती' विघ्न-विदारण विद्या-पति, मति देहु निरञ्जना—जय गण-पति गिरिजा-नन्दना ।। ९

भगवान् कृष्ण-स्तवन

['चण्डी' वर्ष ३ : सम्वत् २००१ वि०—सन् १९४४ ई० : सं० ११]

ललिते ! ललित नाम श्रीकृष्ण ।
गाओ सु-मधुर मुरली, ध्वनि-स्वर, श्रीमाधव गोविन्द—ललिते ! ललित नाम श्रीकृष्ण ।। १
ताप-विदारण, भक्त-उधारण, केशव बाल-मुकुन्द ।
अनुपम अलख, सुधर बिम्बाधर, तारण-तर मुचकुन्द—ललिते ! ललित नाम श्रीकृष्ण ।। २
अच्युत धरणी-धर, धर सर पर, रवि स्व-भक्त अरविन्द ।
नारायण नर तारण कारण, हरण विषय नव-नन्द—ललिते ! ललित नाम श्रीकृष्ण ।। ३
जय गोपाल लाल ललना वृज, तारण शरणानन्द ।
'मोती' जपत देव गुण-गण तव, छूट जाय भव-फन्द—ललिते ! ललित नाम श्रीकृष्ण ।। ४

होरी (सारंग)

['चण्डी वर्ष ३ : सम्वत् २००१ वि०—सन् १९४४ ई० : सं० १२]

प्यारे कृष्ण सों होरी, खेलो आज नई।
बुद्धि-विवेक निज राधा रानी, मन माधव चितई।
हँसि हँसि मान संकेत मनावत, दुःख तम रैन गई—प्यारे कृष्ण सों होरी, खेलो आज नई ॥ १

वृत्ति सखि गुण पञ्च सखा, सब नर्तत भूमि जई।
बाजत ताल मृदङ्ग नर्तकी, आवत नित्य नई—प्यारे कृष्ण सों होरी, खेलो आज नई ॥ २

नाचत थेई तथेई झांझ डफ, नाद रङ्ग विजई।
प्रति क्षण मूरति पटल जात रङ्ग, वृष्टि हार चितई—प्यारे कृष्ण सों होरी, खेलो आज नई ॥ ३

पलटत रूप, देखि पल-पल मन, मोह तिमिर फँसई।
अजब तार नाटक नर रूपक, खेल स्वरूप भई—प्यारे कृष्ण सों होरी, खेलो आज नई ॥ ४

कौन जान गति-मति अति, लीला अपरम्पार नई।
'मोति' भावना भर गुलाल नभ, फेंकत पलक लई—प्यारे कृष्ण सों होरी, खेलो आज नई ॥ ५

होरी (जंगला)

['चण्डी' वर्ष ३ : सम्वत् २००१ वि०—सन् १९४४ ई० : सं० १२]

त्रि-विध सङ्ग, जग खेलत होरी।
त्रि-गुण रङ्ग सत श्वेत साँवरो, लाल बाल भरि झोरी।
श्वेत अबीर साँवरो काजर, जल गुलाल भरि गोरी।
चुनर मन की रँग बोरी—त्रि-विध सङ्ग, जग खेलत होरी ॥ १

चेतन मन रज सत तम खेलत, बुद्धि राग मिल जोरी।
अमल समल मिल रङ्ग उड़ावत, दोउ साँवरी गोरी।
प्रेम पन तन मन चोरी—त्रि-विध सङ्ग, जग खेलत होरी ॥ २

धन कङ्कण सुख रङ्ग पिचकारी, ललित वृत्ति ले दौरी।
छिरकत छटक हुलस हिय हर्षत, निरखि हँसत मुख मोरी।
मैन धँसि आवत जोरी—त्रि-विध सङ्ग, जग खेलत होरी ॥ ३

घन, पर गति, गति धन तव लीला, जग-विस्तार भयो री।
तव क्रीड़ा-मय विश्व सनातन, 'मोती' उधर धरो री।
ताप-हर बाल किशोरी—त्रि-विध सङ्ग, जग खेलत होरी ॥ ४

भगवती श्रीभुवनेश्वरी-स्तवन

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०–सन् १९४५ ई० : सं० ५]

जय भुवनेशि, वर वरद वन्दिनि, त्रिपुर-खण्डिनि,
दुष्ट - दण्डिनि, दमिनि दामिनि मां—जय भुवनेशि, वर वरद वन्दिनि, त्रिपुर - खण्डिनि ।।१
स्तवन पर पाराति-माया, ब्रह्म विष्णु शिवादि काया,
अनल अनिल अपादि व्योम, धरा धारिणि मां——जय भुवनेशि, वर वरद वन्दिनि, त्रिपुर-खण्डिनि ।।२
मणि-पुरा मणि-गेह-मण्डिनि, देव दिव्य सुधा-विधायिनि,
दीन-दुःख-विदारिणि, बल अतुल वर्द्धिनि मां——जय भुवनेशि, वर वरद वन्दिनि, त्रिपुर-खण्डिनि ।।३
शशि-रवी अनलादि, विश्व-व्यापिनि व्योम-विकला,
कलिनि काल-शिला-निवारिणि, अभय-वर्षिणि मां—जय भुवनेशि, वर वरद वन्दिनि, त्रिपुर-खण्डिनि।।४
शक्ति परमा व्यक्तिदा, गुण-वर्द्धिनि वर-विरदा,
विश्वार सागर-पारदा, परमेश-रञ्जिनि मां—जय भुवनेशि, वर-वरद वन्दिनि, त्रिपुर-खण्डिनि ।।५
'मोति' मण्डिनि नागरा, बह्वेश सुन्दर सागरा,
बलि-यज्ञ-रक्षण आगरा, पल अचल मण्डिनि मां—जय भुवनेशि, वर वरद वन्दिनि, त्रिपुर-खण्डिनि ।।६

श्रीसुन्दरि आरति

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०–सन् १९४५ ई० : सं० २]

जय कामेश्वरि देवि, श्रीसुन्दरि विमला, मं श्रीसुन्दरि विमला,
काम-कला कुल कोमल, कनकार्चित कमला ।
जय देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा,
राजेश्वरि विश्वेश्वरि सर्वेश्वरि श्यामा—जय देवि'''जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा ।।१
एकामेक अनेक, एकान्तक अमला, मां एकान्तक अमला,
आनन्देक अमोघा भग-मालिनि अचला—जय देवि'''जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा ।।२
ईषद्धास्येला-मणि, चिन्ता-मणि-गृहणी, मां चिन्ता-मणि-गृहणी ।
नित्य-क्लिन्ना नित्या कौस्तुभ-मणि-धरिणी—जय देवि''''जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा ।।३
लक्षण-लक्ष्य-विहारिणि, भेरुण्डा कन्या, मां भेरुण्डा कन्या,
लम्बोदर मां ललिता गुण-गण गति-गुण्या—जय देवि''''जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा ।।४

माया-पर माया-सर वह्नि-गृहा नित्या, मां वह्नि-गृहा नित्या,
वासिनि-वह्नि शिवा-शिव, शक्ति-सरा सत्या—जय देवि…जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा ॥५
हंसासनि सोऽहं हवि वज्रेश्वरि विद्या, मां वज्रेश्वरि विद्या,
हंस-कला कुल-मोहिनि, मन-मोहिनि विद्या—जय देवि…जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा ॥६
सकल-कला-पर हरि-हर शिव-दूती परमा, मां शिव-दूती परमा,
दूति-कला कलनेश्वरि, अधर-धरा धरमा—जय देवि…जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा ॥ ७
कमलासन मञ्चासनि, पञ्च-महा-ब्रह्मा, मां पञ्च-महा-ब्रह्मा,
त्वरित फल-प्रद, त्वरिता, नित्यानित ब्रह्मा—जय देवि…जय मङ्गल कामा, मां जय मङ्गल-धामा ॥८
हरि-हर-पद्मज कुल-कुल, सुन्दरि श्री-सारा, मां सुन्दरि श्रीसारा,
मूल महा-मधु-मारणि, तारणि तम तारा—जय देवि…जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा ॥९
लव नव सिद्धि प्रदायिनि, सृष्टि-लयाधाना, मां सृष्टि-लयाधाना,
नित्या नील-पताकिनि, बहु-चर मन-चारा—जय देवि…जय मङ्गल-कामा, मां जय मङ्गल-धामा ॥१०
ह्रीं भुवनेश्वरि विजया, भुवन-भवन-चक्रा, मां भुवन-भवन-चक्रा,
माया-तरणि अमाया, दाया भव-नक्रा—जय देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, मां जय० ॥११
सर्वा सर्व-प्रदायनि, मङ्गल-कर सरवा, मां मङ्गल-कर सरवा,
सरवा मङ्गल सुख-सर, स्नान सुमन परवा—जय देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, मां जय०॥१२
कर्माकर्म कु-कर्म ज्वाला-मालिनिका, मां ज्वाला-मालिनिका,
दहन महाऽघ महा-तम, काशाशा-मणिका—जय देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, जय० ॥१३
लक्त-पदाम्बुज शोभित, वहति सुधा चित्रा, मां वहति सुधा चित्रा,
जन-मन-शोक-निवारण, जग-जन-धन-मित्रा—जय-देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, मां जय० ॥१४
ह्रीं भुवनेश्वरि नित्या, नित्या हृल्लेखा, मां नित्या हृल्लेखा,
अनुपम अन्त विधायिनि, अद्भुत भव-रेखा—जय देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, मां जय० ॥१५
श्रीं श्रीं श्रीत्रिपुरा मां, सुन्दरि श्रीविद्या, मां सुन्दरि श्रीविद्या,
पर-शिव समर स-सर शिव, शक्ति परा विद्या—जय देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, मां जय०॥१६
बाल-बलाका बाला, राजेश्वरि त्रिपुरा, मां राजेश्वरि त्रिपुरा,
ऐं क्लीं सौः हंसो ह्रीं श्रीं, ललिता त्रिपुरा—जय देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, मां जय० ॥१७
विन्दु त्रिकोण वसूदल, दश-दश मनु-दल मा, मां दश-दश-मनु-दल मां,
अष्ट-पदम षोडश-दल, वृत्त त्रि-तल थल मा—जय देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, मा जय० ॥१८
भू-पुरत्रय तव, पुर-सुर रम्य-तमा नगरी, मां रम्य-तमा नगरी,
प्रेता पञ्च महा-शिव, नव मणि-पुर नगरी—जय देवि, जय देवि, जय मङ्गल-कामा, मां जय० ॥१९
चिन्ता-मणि-गृह वासो, विन्दु-परो धामः, मां विन्दु-परो धामः,
प्रसरति पद्म-सुधा जन, 'मोति' वसत ग्रामः—जय देवि, जय देवि जय मङ्गल-कामा,
मां जय-मङ्गल-धामा, राजेश्वरि विश्वेश्वरि सर्वेश्वरि श्यामा ॥२०

प्रवचन : १ निवेदन

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०–सन् १९४५ ई० : सं० ३]

किन शब्दों में अली ! स्वीकारी जाय कृतज्ञता—उस परम दया-मयी, परमा विश्व-व्यापिनी महा-शक्ति की—कि जिस महा-माया ने अपने पादाम्बुज-झरित दिव्य सुधाम्बुज-धारा से, इस क्षुद्र-तम, धर्म-धारा-च्युत स्व-भक्तों के मृत-प्राय हृदयों में श्री चण्डी-पुस्तकाकार-रूपेणाप्यायन द्वारा, पुनर्जीवन संस्कार करने की कृपा की है।

अब हम कौल भक्तों का कर्तव्य है कि स्वान्तःकरण की गम्भीरता में स्थित, चित्-सत्य कल्पतरु-मूल में श्रीदया-मयि की स्थापना कर उसका एक सङ्ग-भाव से पूजन करते हुए (सदुपदेश-रूप) श्रीप्रसाद शिरोधार्य करें।

उस परमा महा-शक्ति स्वेष्ट-देवता के आराधनार्थ प्रत्येक कौल, यथा-शक्ति, यथा-सामर्थ्य, सेवा-द्रव्य, स्व-कर सम्पुट में तत्पर कर सम्मुख उपस्थित हो, पुस्तक-रूप-धारिणी श्रीमहा-माया चण्डी को अर्घ्य-दान करें, यह प्रत्येक कौल का कर्तव्य है। अन्यथा उस कौल व्यक्ति को कर्तव्य-विमुखत्व, पशुत्व, कृतघ्नता तथा श्रीप्रसाद-त्याग का प्रायश्चित्त लग सकता है। इस प्रकार का काल उपस्थित हुआ सा प्रतीत होता है।

अतः लेखक की श्री कौल जनता से प्रार्थना है कि बनते प्रयत्न से श्री चण्डी पुस्तकाकारिणी की मासिक पूजा में सहायता करे। कौल-समाज का उत्थान इसी की दया पर निर्भर है। हम कौल एक जाति, एक जीव हैं। श्रीमाँ का पूजन-काल, भैरवी-चक्रावृत है। इसमें वर्ण-विभेद नहीं। सर्व प्रचार-रूप गुरु कार्य में एक साथ चारों ओर से छमानाछे...ए...ए....ए जोर लगावें।

यह श्री कौलात्म-जनों से नम्र निवेदन है।

[वर्ष ४ के अङ्क ३ में उक्त प्रवचन के साथ 'योग' शीर्षक प्रवचन भी प्रकाशित हुआ है, जो 'मुमुक्षु मार्ग' (रहस्योद्घाटन) में द्रष्टव्य है।]

भगवती अम्बा माता

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०–सन् १९४५ ई० : सं० ४]

भुवनेश्वरी परमेश्वरी, राजेश्वरी विश्वेश्वरी, माहेश्वरी सिद्धेश्वरी, सिद्धीश्वरी कृष्णेश्वरी।
रामेश्वरी कामेश्वरी, दानेश्वरी ध्यानेश्वरी, कमलेश्वरी वागीश्वरी, राधेश्वरी सर्वेश्वरी ॥१
पद्मेश्वरी कालेश्वरी, शक्तीश्वरी भक्तीश्वरी, रक्तेश्वरी पीतेश्वरी, नीलेश्वरी श्यामेश्वरी।
श्वेतेश्वरी रंगेश्वरी, व्योमेश्वरी अनलेश्वरी, अनिलेश्वरी सत्येश्वरी, नन्दीश्वरी नन्देश्वरी ॥२
नभ-ईश्वरी नग-ईश्वरी, खग-ईश्वरी जग-ईश्वरी, हर-ईश्वरी च हरीश्वरी, सुर-ईश्वरी देवेश्वरी।
असुरेश्वरी नागेश्वरी, रासेश्वरी नृत्येश्वरी, गीतेश्वरी गानेश्वरी, ब्रह्मेश्वरी वाद्येश्वरी ॥३
इन्द्रेश्वरी वज्रेश्वरी, रुद्रेश्वरी शूलेश्वरी, चक्रेश्वरी खड्गेश्वरी, सोमेश्वरी वामेश्वरी।
चन्द्रेश्वरी सौरेश्वरी, सूर्येश्वरी रवि-ईश्वरी, दानेश्वरी गोपेश्वरी, गोपीश्वरी ज्ञानेश्वरी ॥४
नद-ईश्वरी च नदीश्वरी, नक्रेश्वरी मत्स्येश्वरी, कर्मेश्वरी सर्पेश्वरी, माहेश्वरी च फणीश्वरी।
वरदेश्वरी च वरेश्वरी, योगेश्वरी अखिलेश्वरी, अम्बा भवानी भक्त भय, भव-नाशिनी मोतीश्वरी ॥५

महा-माया भगवती तारिणी-स्तवन

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०—सन् १९४५ : सं० ५]

श्रीतारिणी मां, तारिणी, भव-तारिणी तम मा, जय जगदम्ब भक्त-भय - भञ्जिनि ।
त्रिगुण-कारिणी, पाप-वारिणि तरणि तारिणि मां, जय जगदम्ब भक्त-भय - भञ्जिनि ॥१
भय भयावह विश्व-सिन्धू नार-नक्र-मयं न बन्धू,
पवन-गति अति वेग कर्ण धरा सु-धारिणि मां, जय जगदम्ब भक्त - भय - भञ्जिनि ॥२
लीलया नव-देह-धारिणि, रूप-पर, पर तदपि चारिणि,
भक्त दर्शन भाविनी पर - पुरुष - पालिनि मां, जय जगदम्ब भक्त-भय-भञ्जिनि ॥३
आर्त-जन-दु.ख-दारिणी मां, सर्व-जग सुख-कारिणी,
बहु-विष्णु-शङ्कर-सेविता, गुण-गण-विकासिनि माँ, जय जगदम्ब भक्त-भय-भञ्जिनि ॥४
सदयि करुणा-सागरा, गति-शक्ति प्रस्फुर आगरा,
रण विश्व-शौर्य कला धराधर धरणि धारिणि मां, जय जगदम्ब भक्त-भय - भञ्जिनि ॥५
एक अङ्क अखण्ड अक्षर, अखिल गण अनन्त कर धर,
'मोति' पार-प्रदायिनी भय-शोक-हारिणि मां, श्रीतारिणी मां, भव-तारिणी तम मा। जय०॥६

भगवान् दत्त गुरु

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०—सन् १९४५ : सं० ६]

भज मन दत्त गुरु, पुरुष-पद-धारक दत्त गुरु । अनुसूया सति पुण्य अत्रि-गृह, जन्म्यो विश्व-गुरु ।
पुरुष-पद-धारक दत्त गुरु, भज मन दत्त गुरु ॥१
ब्रह्मानन्द सुखद केवल वपु, ज्ञान-स्वरूप गुरु । भावातीत रहित गुण तन्मय, विमल असङ्ग गुरु ॥२
पुरुष-पद-धारक दत्त गुरु, भज मन दत्त गुरु । अलख निरंजन एक व्यक्ति, जन-तारण ज्ञान गुरु ॥३
'मोती' श्रीअवधूत अनामय, अपरम्पारगुरु । पुरुष-पद-धारक दत्त गुरु, भज मन दत्त गुरु ॥४

भगवती-स्तवन

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०—सन् १९४५ : सं० ८]

जयति भुवनेशी भैरवि भवानी उमा, जयति श्री-श्री रमा रङ्क-पाला ।
जयति कर-पाश-धर, जयति जन-शोक-हर, रोग-हर दुःख-हर ज्ञान-शाला ।
जयति श्रीकाली तारा रमा सुन्दरी, षोडशी छिन्न - मस्ता सु - बाला ।
जयति भुवनेशी भैरवि भवानी उमा, जयति श्री-श्री रमा रङ्क - पाला ॥१
जयति मातङ्गी पीताम्बरा धूमजा, धूम - रूपा गरा काल - काला ।
जयति श्रीबहुचरा काम - रूपा कला, कौलिनी नित्य - नित्या रसाला ।
जयति भुवनेशी भैरवि भवानी उमा, जयति श्री-श्री रमा रङ्क-पाला ॥२
कृष्ण कालिन्दिरा, सारसा रत्नजा, रत्न - रूपा मराला कराला ।
व्यापिनी श्रीविराटा अनन्ता परा, विश्व-पाला महा - विश्व - काला ।
जयति भुवनेशी भैरवि भवानी उमा, जयति श्री - श्री रमा रङ्क - पाला ॥३
देवी मीनाक्षी कामाक्षि ज्वाला सरा, प्रलयदा चानला रुद्र - माला ।
सर्व-सञ्चालिनी, विष्णु - अज-पालिनी, स्तोत्र-स्पन्दा परा 'मोति' - पाला ।
जयति भुवनेशी भैरवि भवानी उमा, जयति, श्री-श्री रमा रङ्क - पाला ॥४

मां का स्तवन

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०—सन् १९४५ ई० : सं० ९]

जय विश्वेशि, विश्व-विहारिणि, सतत-चारिणि । ताप-त्रारिणि, अनल-सारिणि मां ।। जय०।। १
जय बहुचरा पीताम्बरा, भट्टासुरारि दिगम्बरा । जय तरण तारिणि मां ।। जय० ।। २
जय तार सारा पर तरा, मन तार पाराधर वरा । जय करण कारिणि मां ।। जय० ।। ३
जय नार केयूरा हरा भव पार धाराधार धरा । जय मरण वारिणि मां ।। जय० ।। ४
जय जयति चिन्तामणि गृहा, जय कौस्तुभो माला-धरा । जय चरण तारिणि मां ।। जय० ।। ५
जय पाद पद्म सुधा-धरा, वर अभय पद्म कला-धरा । जन कलुष-हारिणि मां ।। जय० ।। ६
जय 'मोति' तरणि तारिणि मां, सर्व-धात्रिपुर-कारिणि । जय भक्त-तारिणि मां ।। जय० ।। ७

महा-पुरुष भगवान् शरभ

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०—सन् १९४५ ई० : सं० १०]

पार-ब्रह्म परमेश्वर जग श्री शरभेश्वर मन-गामी, पूर्ण परात्पर पुरुष सर्व पर, सर्वेश्वर पर-नामी ।
महा-शिव खमा खमा करता, शक्ति गति पक्ष लक्ष जामी ।। १
एक अनन्त अमोघ अनामय, नहिं समत्व पर कोई, पुरुष ईश-पद-पद्म सेव बहु, शक्ति पार नहिं कोई ।
अलख पर रूप धरे कोई, ध्यान पर विष्णु धार जोई ।। २
शक्ति पार-पर परा-शक्ति पर, जुग सुधार कर सोई, आगम निगम भेद नहिं पावत, पारब्रह्म पर कोई ।
ज्ञान पर गम्य रूप होई, रूप-धर वपु अरूप सोई ।। ३
बहु-सप्तक बहु-पुरुष शोधकर, भाव अनन्त बतायो, आज अनन्त को यह रूपक दिव्य दृष्टि दिखरायो ।
ब्रह्म-चित्सागर पर पायो, प्रकृति पर दिव्य गान गायो ।। ४
सृष्टि क्रिया कर भेद स्वेद नख पक्ष चञ्चु-धारी, अंग अंग बहु सृष्टि सार-सर प्रकृति मूल-वारी ।
अङ्क अज एक सर्व-कारो, 'मोति' गुण गात देत तारी ।। ५

विश्व जननी [राग बसन्ती होरी]

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०—सन् १९४५ ई० : सं० ११]

कहँ जाय छिपी जननि हें, भव-भीति हारिणी हे ।। कहँ जाय छिपी जननि हे ?
तुम बिन जगत न देखूं, किन देख पार पाया ।
है कौन देव जाया, भव - भीति-हारिणी हे ।। कहँ जाय छिपी जननि हे ?
तू सर्व - विश्व - जननि, तेरा जगत पसारा ।
नहिं पार कोइ पाया, भव - भीति - हारिणी हे ।। कहँ जाय छिपी जननि हे ?
तू विश्व - पालिनी हे, तू विश्व - सार माया ।
नहिं वेद गीत गाया, भव - भीति - हारिणी हे ।। कहँ जाय छिपी जननि हे ?
तू विश्व - नाशिनी माँ, प्रलयङ्करी अदाया ।
करुणा - समुद्र छाया, भव - भीति - हारिणी हे ।। कहँ जाय छिपी जननि हे ?
तू विश्व - तारिणी माँ, जन भाव सत्य छाया ।
'मोति' न अन्त पाया, जग - ईश - पालिनी हें ।। कहँ जाय छिपी जननि हे ?

भगवान् शिव

['चण्डी' वर्ष ४ : सम्वत् २००२ वि०—सन् १९४५ ई० : सं० १२]

शिव शिव हर हर, शिव शिव हर हर, बाघाम्बर धर, डमरु सुकर धर । शिव० ॥१
वर त्रि-शूल धर, अभय सु-वर-कर, भस्म अङ्ग-धर जटा जूट धर । शिव० ॥२
भाल चन्द्र-सर तीन नयन-धर, नाग हार धर, मुण्ड माल धर । शिव० ॥३
जटा गङ्ग सारङ्ग अङ्ग धर, उमा - वाम श्रीनाथ दक्ष धर । शिव० ॥४
गरल कण्ठ धर, नील कण्ठ धर, नन्दि पीठ भव भूत भार धर । शिव० ॥५
क्रिया कर्म कारण अनन्त-सर, भक्त 'मोति' कर सार सु-सुधर धर । शिव० ॥६

भगवती श्री बाला

['चण्डी' वर्ष ५ : सम्वत् २००२ वि०—सन् १९४६ : सं० १]

जयति वागीश्वरी जयति भुवनेश्वरी, जयति विश्वेश्वरी देवि बाले ।
जयति श्रीसुन्दरी, त्रिपुर-पुर-मालिके, विश्व-सञ्चालिके काल-काले ॥ १
दश-मयी गुण-मयी त्रिगुण-गुण-जालिके, सालिके, तिमिर-नाशिनि तमाली ।
तार-सर-पार सर-सार सारिणि परा, पर-मयी एक तू देवि बाले ॥ २
श्रीपरा-शक्ति शक्त्यङ्ग-गुण-धारिणी, अमल रवि-कोटि सम-काश-धारी ।
अस्ति अस्तित्व-पर मान-मख-मानिनी, देव शिव सिद्धि सङ्काशि-शाले ॥ ३
रूप की भावना कौन वर्णन करे, शारदा शेष ब्रह्मा न विष्णू ।
हैं अलङ्कार जो दिव्य धारण किये, बोज-फुर भाव कमनोय - जाले ॥ ४
सर्व-वर्णन - रहित है सदा पूर्ण - पर, भक्त 'मोती' बने स्तवन-माला ।
है यही आचरज समझ में आव कस, गुण-गणातीतं धर एक-माले ॥ ५

भगवती श्री विद्या मां

['चण्डी' वर्ष ५ : सम्वत् २००२ वि०—सन् १९४६ : सं० २]

(विजय छन्द)

जय सुन्दरी राजेश्वरी, जय षोडशो ललिताम्बिका । जय बाल-रूपा बालिका, बालाबला मुख-चन्द्रिका ॥१
जय श्रीमहा-विद्या परा, विद्या परा पर-सुन्दरी । कलयाण वृष्टि-करी सुधा-सर, ज्ञान-सार प्रभा-करी ॥२
श्रीचक्र छे जग-चक्र आ, उत्पत्ति-पालन-कारिणी । रज-रूप सत मा तम थये, तम-रूप जग-संहारिणी ॥३
तव रूप-शोभा को कहे, तव नाम ते कह नार छे । गति-सार सुन्दर सुन्दरी, आरूप सूप अपार छे ॥४
शिव शारदा वाणो थको, को पार तव पामे प्रभा । कवि अङ्ग ने शृङ्गार नू, वर्णन करे क्या थी सभा ॥५
'मोती' यदो कोई वर्णवा, साहस करे ते मूढ छे । तव चरण-पङ्कज भक्ति, ध्याने जे रहे ते गूढ छे ॥६

'राष्ट्र-गुरु' परम पूज्य स्वामी जी महाराज
की
७ वीं पुण्य-तिथि : १५ जून ८६

गूंजे अम्बर में अमर नाद—दतिया के दाता की जय हो।
शिव-सूत्र भक्ति-सूत्रादिक के—अद्भुत व्याख्याता की जय हो।
जय हो भक्तों के क्षेम-राज—जग करे तुम्हारा अभिनन्दन!
सौभाग्य उन्हीं का जो करते—पद-धूलि तुम्हारी का वन्दन!

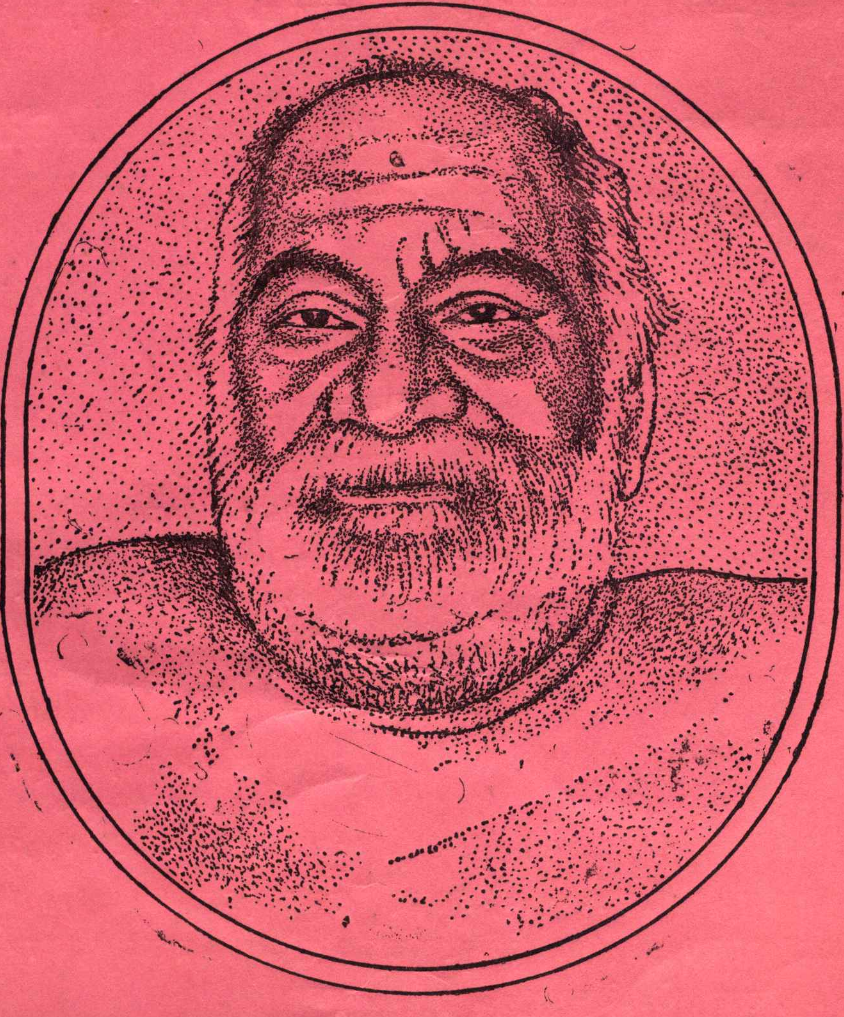

"गुरु का अर्थ गुरु का स्थूल शरीर नहीं है क्योंकि मानव शरीर चिन्मय देह नहीं है। हिन्दू शास्त्रों में देह-पूजा के लिये स्थान ही नहीं है। स्थूल शरीर के माध्यम से ही सूक्ष्म की तुष्टि होती है। अतएव माता, पिता और अतिथि के समान गुरु-शरीर भी सेव्य तो है किन्तु वह शरीर आराध्य नहीं है। उस शरीर में जो दिव्य ज्ञान-ज्योति है, वही आराध्य है।"

—'राष्ट्रगुरु' स्वामी जी

रजि० सं० ३२९८१।५७] जून-जुलाई १९८६ [रजि० सं० ए० डी० ९६

"ठण्डी स्फूर्ति-दायक हवाएँ" क्या आप भूल गए हैं ?

ठण्डी, स्फूर्तिदायक हवाएँ, चहल-पहल वाले अलमस्त नगर, छोटे स्वच्छ गाँव, हरे-भरे रास्ते, पहाड़ों की इठलाती बल खाती जल-धारायें, हिमाच्छादित पर्वत-शिखर, नौका-विहार, गोल्फ, घुड़सवारी, ट्रेकिंग, शान्त आश्रम—जो भी आप चाहें, गर्मी की छुट्टियों में उ० प्र० की पहाड़ियाँ आपको सब कुछ प्रदान करेंगी।

आप अपनी गतिविधि चुन सकते हैं और उसी में लगे रह सकते हैं या उत्तर प्रदेश की पहाड़ियाँ जो विविधतायें प्रदान करती हैं, उनका आनन्द ले सकते हैं। या फिर मात्र झरोखे निहार सकते हैं और मैदानी-क्षेत्र के पुराने मित्रों से मिल सकते हैं।

बड़े स्थानों पर सिनेमा-घरों तथा रेस्तराओं की भरमार होती है लेकिन अनेक छोटे स्थानों का अपना अलग ही मजा है। लोहाघाट, चम्पावत, पिथौरागढ़, चौकोड़ी, डाक पत्थर, धनोल्टी और चम्बा—सभी अनोखे, शान्त व सुन्दर !

सभी जगह आप आसानी से पहुँच सकते हैं किन्तु वहाँ पहुंचने पर निराशा से बचने के लिये पहले से स्थान बुक करा लीजिये। विशेष गन्तव्य पुस्तिका के लिए उ०प्र० पर्यटन को लिखिए अथवा हमसे सम्पर्क कीजिये। हम आपको बतायेंगे कि आपको तथा आपके परिवार को कहाँ जाना चाहिये। आशा है कि आप गर्मी की तपन भूले नहीं होंगे। क्या आप भूल गए हैं ?

पर्यटकों की सुविधा हेतु सतत प्रयत्नशील

उत्तर प्रदेश पर्यटन

३—नवलकिशोर रोड, चित्रहार भवन

लखनऊ—२२६००१

फोन : ४५२५२ : ४८३४९ : ४७७४९ : ४५५५५

और अहमदाबाद (फोन ४६४३१८)। बम्बई, कलकत्ता (फोन २२७८५५)। चण्डीगढ़ (फोन ४१६४९)। मद्रास (फोन ४७९७२६)। नई दिल्ली (फोन ३२२२५१)। अथवा गढ़वाल मंडल विकास निगम लि० ७४।१, राजपुर रोड, देहरादून (फोन २६८१७)।

[कुमाऊ मंडल विकास निगम लि०, सचिवालय-भवन, नैनीताल (फोन २५०९)।]

सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक : ऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, इलाहाबाद—६